I.S.S.N. 0975-6531

₹50/-

वैचारिकी

VAICHARIKI

जनवरी-फरवरी 2021 * भाग 37 - अंक 1

भारतीय विद्या मन्दिर

भारतीय विद्या मंदिर की द्वैमासिक शोध प्रधान पत्रिका

• वैचारिकी •
जनवरी-फरवरी 2021 भाग 37 अंक 1

भारतीय विद्या मंदिर के प्रकाशन

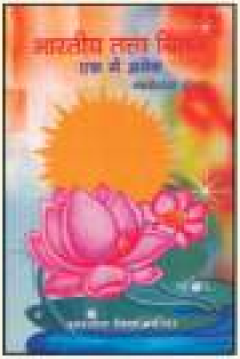

भारतीय तत्व चिंतन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 190
ISBN : 978-81-89302-15-9

रसो वै सः
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 165
ISBN : 978-81-89302-16-7

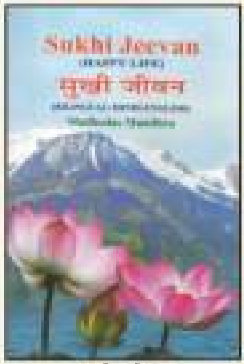

सुखी जीवन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 275/- पृ. सं. 216
ISBN : 978-81-89302-52-8

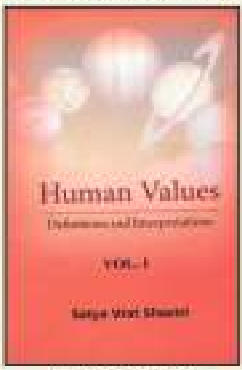

Human Values
Satya Vrat Shastri
Price : Rs. 395/- Pages : 264
ISBN : 978-81-89302-45-0

मानव मूल्य परिभाषाएं और व्याख्याएं
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 550/- पृ. सं. 304
ISBN : 978-81-89302-52-8

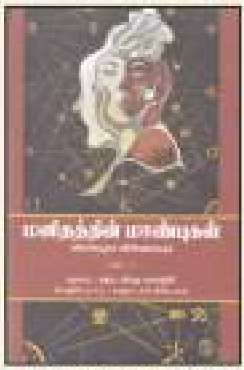

Human Value (Tamil)
Satya Vrat Shastri
Price : 450/- Pages : 320
ISBN : 978-81-89302-56-6

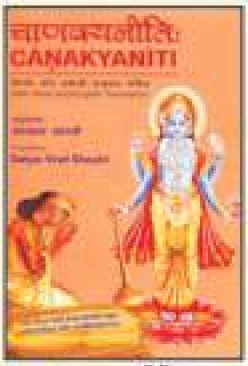

चाणक्यनीतिः
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 295/- पृ.सं. 194
ISBN : 978-81-89302-42-9

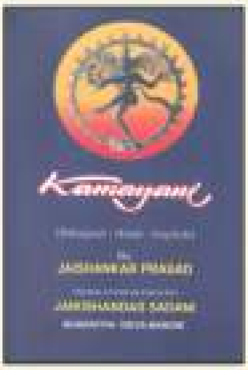

Kamayani
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 900/- Pages : 477
ISBN : 978-81-89302-44-3

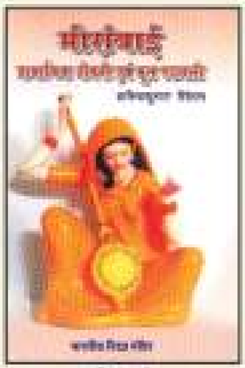

मीरांबाई
प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली
संपा. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल
मूल्य 900/- पृ.सं. 584
ISBN : 978-81-89302-41-2

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें
शंकरलाल सोमानी, सिम्पलेक्स हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल : 09830559364 ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की त्रैमासिक शोध प्रधान पत्रिका

वर दे, वीणावादिनि वर दे !
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव भारत में भर दे !
काट अंध-उर के बंधन-स्तर बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर;
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर जगमग जग कर दे!
नव गति, नव लय, ताल-छंद नव नवल कंठ, नव जलद-मन्द्ररव;
नव नभ के नव विहग-वृंद को नव पर, नव स्वर दे!
वर दे, वीणावादिनि वर दे!

अध्यक्ष एवं प्रधान सम्पादक
डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

सम्पादक
डॉ. बाबूलाल शर्मा

I.S.S.N. 0975-6531

वैचारिकी

वर्ष : 37 अंक 01

धर्म-दर्शन-विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास-पुरातत्व, कला-लोककला
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त

जनवरी-फरवरी 2021 ● पौष कृष्ण 02-फाल्गुन कृष्ण 01, 2077 वि. सं. ● रु. 50

संपादकीय कार्यालय
भारतीय विद्या मंदिर
12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी
कोलकाता-700087
दूरभाष : 033-71001614
ई-मेल : bvm.vaichariki@gmail.com
वेबसाइट : www.bharatiyavidyamandir.org

प्रबंध सम्पादक
शंकरलाल सोमानी
27, शेक्सपीयर सरणी
कोलकाता-700017
मो. 09830559364
ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

सदस्यता शुल्क
एक प्रति 50/- रुपये
वार्षिक 300/- रुपये
द्वैवार्षिक 600/- रुपये

भुगतान
Payee's Name :
BHARATIYA VIDYA MANDIR
Current A/c.No. : 32030320176
Bank : State Bank of India
Branch : New Market
IFSC Code No. : SBIN0004662

अनुक्रम

● संवण दस्तुर:राठौड़ राजाओं का विश्वास और इतिहास- **निशा भारद्वाज** 06
● विद्वान और धर्मात्मा पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की कीर्तिगाथा - **डॉ. विद्यानन्द ब्रह्मचारी** 13
● मीरांबाई और तेलुगु की कवयित्री मोल्ला का तुलनात्मक विश्लेषण - **डॉ. अन्जानेयूलु** 17
● प्रियेचारुशीले निबंधकार : नर्मदा प्र. उपाध्याय - **अभिजीत सिंह** 21
● प्राचीन वाङ्गमय में समय की सापेक्षता - **डॉ. श्याम मनोहर व्यास** 24
● भारतीय आर्यो के रथ पर सवार इतिहास- **प्रमोद भार्गव** 27
● जयपुर के गृहयुद्ध का कारण बना एक विवाह- **आनन्द शर्मा** 31
● चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व का समग्र विकास तथा मूल्य आधारित शिक्षा - **डॉ. रामेश्वर प्रसाद गुप्त** 35
● श्रीमद्भगवतगीता और कुर्आन में निहित दार्शनिक पक्ष एवं मूल्य - **डॉ. मोईनुद्दीन** 40
● सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के जनक : स्वामी विकानन्द - **डॉ. आनन्द कुमार शर्मा** 42
● किन्नर और उनका निवास स्थान - **डॉ. रचना चौहान** 50
● अनोखे थे पन्ना के राजा:अमान सिंह - **जगदीश किंजल्क** 57
● हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा का सम्मान देने वाले पहले राष्ट्राध्यक्ष:नेताजी सुभाषचंद्र बोस - **डॉ. अमरनाथ** 62
● Quantum Physics and Destiny : Can we Change Destiny Using Quantum Physics? - Madhubabu Prakhya 65
● राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-साहित्य में प्रकृति के विविध रूप - **निशा चौहान** 76
● मानव-ऐक्य से ब्रह्म-ऐक्य का सफर : गुरु गोबिंद सिंह का काव्य - **डॉ. शकुंतला कालरा** 82
● **पाठक मंच** - 87
● **प्रतिस्वर** - 93

■ प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-प्रकाशक की अनुमति आवश्यक।
■ प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।
■ समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र, कोलकाता होगा।

गत 10-11 महिनों में सम्पूर्ण विश्व में भय का वातावरण छाया रहा। हमारे देश की जनता ने कोविड-19 महामारी से लड़ने की विपुल शक्ति का परिचय दिया। वैज्ञानिकों के सराहनीय प्रयास से वैक्सीन उपलब्ध होना गर्व का विषय है। वैक्सिन लगवाने से शरीर की प्रतिरोधक क्षमता काफी बढ़ जायेगी जिससे रोग से संक्रमित होने का खतरा नगण्य-सा हो जायेगा। कोविड-19 टीकाकरण अभियान पूर्ण रूप से सुरक्षित है। इससे रोग से निजात मिलेगी। हमारे सैनिकों, पुलिस कर्मचारियों, चिकित्सा जगत में कार्यरत डाक्टरों-नर्सों-कम्पाउंडरों-एम्बुलेंस ड्राइवरों आदि ने अपनी जान की बाजी लगाकर अपने कर्त्तव्य का निर्वाह योद्धाओं की तरह किया जिससे वे हार्दिक सम्मान के अधिकारी हैं। हाँ अभी कोरोना गया नहीं है। अतः कोरोना से बचाव के लिए मास्क पहनने, दो गज की दूरी तथा साफ-सफाई का विशेष ध्यान रखना अति आवश्यक है। यह हमारी अपनी सुरक्षा के लिए तो जरूरी है ही, साथ ही यह हमारा सामाजिक दायित्व और राष्ट्रीय कर्तव्य भी है।

आशा है कि पिछले 10-11 महीनों के एक अजीब-से जीवन से शीघ्र ही मुक्ति मिलेगी और अब पुनः पूर्ववत कार्यरत होने का सुअवसर मिलेगा। गत एक वर्ष में इंटरनेट का जितना उपयोग हुआ, उसके माध्यम से लगातार देश-विदेश में दूर बैठे हमारे परिवारजनों, मित्रों व पाठकगणों से जिस प्रकार हम जुड़े, वह पूर्व में कभी नहीं हुआ। हमने बहुत से कार्यक्रम इंटरनेट के माध्यम से किये। कोरोना काल में आवागमन अत्यंत कम हो गया। घर बैठे कार्य करने की बाध्यता हो गई। कार्यालयों का सारा कार्य घर से होने लगा। यह प्रभाव खासतौर से आई.टी. क्षेत्र में विशेष देखा गया। बच्चे स्कूल नहीं जा सके। उनका अध्ययन ऑन लाइन क्लास के द्वारा घर पर ही होता रहा। परंतु वह बात कहाँ कि वे अपने साथियों से मिल पाते थे, चहकते थे, खेल-कूद पाते थे। उम्मीद करता हूं कि शीघ्र ही स्कूलों के प्रांगण और खेल के मैदान फिर इनकी किलकारियों से गूजेंगे। कहने का मतलब है कि काम तो खैर होते रहे परंतु एक निष्क्रियता का वातावरण छाया रहा, वह बात कहाँ जो मिलने-जुलने से होती थी, वह आत्मीयता विचार-विमर्श, पारस्परिक सुख-दुःख का एहसास कहाँ? लेकिन लगता है कि जो वैश्विक परिस्थितियां बन रही हैं वे आगे भी हमारे जीवन को प्रभावित करती रहेंगी।

अब एक हॉल में बैठकर सभाएं नहीं होंगी। हम इंटरनेट के माध्यम से दूर बैठे विद्वानों और श्रोताओं के साथ बैठकें कर सकेंगे। विद्वान-वक्ता एवं संगीत के कलाकार घर बैठे अपने ज्ञान और अपनी कला के साथ देश-विदेश के अपने श्रोताओं तक पहुंच सकेंगे। जितने कार्यक्रम होते थे उससे अधिक कार्यक्रम होंगे, क्योंकि यात्राएं नहीं करनी पड़ेंगी। हम कार्यालय के कार्य भी शायद कुछ अधिक कर पायेंगे। लेकिन उत्पादन और निर्माण के लिए तो कार्य स्थलों पर काम होना जरूरी है। आशा है अब कल-कारखाने भी धीरे-धीरे अधिक खुलने लगेंगे। अपना देश भारत वर्ष जिस तरह से कोरोना से लड़ा है उससे विश्व के लोगों को भी भारत पर विश्वास अधिक हुआ है व देश के अंदर अधिक निवेश होने की संभावनाएं भी बढ़ी हैं। उम्मीद करता हूं कि देश और तेजी से आर्थिक समृद्धि की तरफ बढ़ेगा। इस दौरान किसान एक-दो महिनों को छोड़कर प्रायः सभी दिन काम कर रहे थे, तभी तो हमें अनाज मिल रहा है। किसान आंदोलन से दिल्ली, पंजाब व हरियाणा को जो असुविधाएं हो रही हैं इससे हमलोग अनभिज्ञ नहीं हैं। इस आंदोलन का पक्ष और विपक्ष दोनों मेरी समझ से बाहर है। लेकिन इसका समाधान जल्दी हो जाये तो अच्छा है।

भारत की सीमाओं पर शांति हो रही है। देश की सुरक्षा सर्वोपरि है। यह हमारे लिए गर्व का विषय है कि देश की सुरक्षा क्षमता में अभिवृद्धि ने चीन और पाकिस्तान दोनों की आक्रामक गतिविधियों को कुंठित कर दिया है और विश्व अब भारत की नेतृत्व क्षमता को मानने लगा है। राष्ट्र शांति के वातावरण में ही सर्वांगीण प्रगति कर सकता है। हमारे सैनिकों के शौर्य पर हमें गर्व है। उन्हें शत-शत नमन, वंदन एवं नमस्कार। जो शहीद हुए हैं उनके प्रति श्रद्धांजलि है। शहीदों को समर्पित एक गीत याद आ रहा है जो हृदय को झकझोरता है जिसे कवि प्रदीप ने लिखा, सी. रामचन्द्र ने संगीत दिया -***ऐ मेरे वतन के लोगो जरा आंख में भर लो पानी, जो शहीद हुए हैं उनकी जरा याद करो कुरबानी।***

कोरोना काल में हेमंत ऋतु की शीतलहर के बाद अब बसंत की बयार बहने लगी है। वृक्षों में नयी नयी कोपलें फूट रही हैं। पेड़-पौधे पर पुष्प पुष्पित हो रहे हैं। तरह तरह के बहुरंगी पुष्पों की छटा मनोहारी लग रही है। कोयल की कूक भी अब सुनाई देने लगी है। मानो बसंत अब नव जीवन के संचार का उद्घोष कर रहा है। कवियों ने बसंत ऋतु में संयोग-वियोग, शृंगार का अतीव सरस सुमधुर वर्णन किया है, जैसे संयोग का यह वर्णन- ***नेह लग्यो मेरो श्याम सुंदरसों, आयो वसंत से बन फूले, खेतन फूली सरसों।*** इसी तरह महाकवि जयदेव ने वियोग को लेकर निम्नांकित सुन्दर उद्भावना की है-

ललितलवंगलतापरिशीलन-कोमलमलयसमीरे।
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुंजकुटीरे।।
विहरति हरिरिह सरसवसन्ते,
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते।। *(गीत गोविन्द।।1/1।।)*

राधा की व्यथा और मनोदशा से द्रवित हुई उसकी एक सखी उससे बोली,राधे! सुन्दर दिखने वाले पुष्पों से लदी बेलों के स्पर्श से मादक, मन्द प्रवाहित मलय समीर के साथ, भौरों की पंक्तियों से गुंजित तथा कोयलों की कूक से कूजित कुंजों वाले तथा वियोगियों को सन्तप्त करने वाली इस बसन्त ऋतु में तुम्हारे प्रियतम श्रीकृष्ण तो तरुणी गोपियों के साथ नाचते-गाते फिरते हैं। सखी के कथन का अभिप्राय यह है कि यह ऋतु अत्यंत मादक है, श्रीकृष्ण को रूपवती गोपियों का सान्निध्य उपलब्ध है, ऐसे परिवेश में रमणियों द्वारा दिये गये रमण के आमंत्रण को श्रीकृष्ण द्वारा ठुकराना कठिन-सा है। यदि तुम उन पर अपना अधिकार चाहती हो तो तुम यथाशीघ्र अपने प्रेमी श्रीकृष्ण से मिल लो, विलम्ब करने से वह तुम्हारे हाथ से निकल जायेगा और फिर तुम हाथ मलती रह जाओगी।

क्या इस बसंत के बाद का जीवन पहले जैसा ही रहेगा या कुछ परिवर्तन आयेगा। ऐसे बहुत से प्रश्न मन में उठते हैं। मेरी तो यही कामना है कि कोरोना काल में मुरझा गये मन में कवियों द्वारा वर्णित बसंत वर्णन नये उत्साह का संचार करे।

कोरोना के कारण वैचारिकी के प्रकाशन में विलंब हुआ है। हम शीघ्र ही नियमित प्रकाशन की चेष्टा में हैं। आप सभी सुधी-पाठकों के पत्र, आलेख, विचार व सहयोग हमें और प्रेरणा देंगे। आप हम पर अपना आशीर्वाद इसी तरह बनाए रखें।

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ,

(डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा)

लेखकों से अनुरोध

1) वैचारिकी में प्रकाशनार्थ विभिन्न विषयों पर अनावश्यक विस्तार से रहित शोध पूर्ण आलेख संदर्भ सहित सहर्ष आमंत्रित हैं। इसके अलावा खास मौकों, उत्सव या पर्वों से संबंधित आलेख भी समय से कम से कम 3 माह पूर्व भेजे जा सकते हैं।

2) प्रकाशन हेतु भेजे गए किसी भी आलेख का प्रकाशन संपादक का विशेषाधिकार है और प्राप्त होने वाले प्रत्येक आलेख को पत्रिका में प्रकाशित करना बाध्यता नहीं है।

3) आलेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें क्योंकि अस्वीकृत आलेख वापस करने का हमारे यहां कोई प्रावधान नहीं है।

4) आलेख/ रचना वर्तमान समय की मांग के अनुसार टाइप करवा कर यूनिकोड या DV-TTSurekh फोंट में हमारे ईमेल bvm.vaichariki@gmail.com पर ही भेजें तथा उसकी प्रति डाक से भी भेज दें। नितांत असुविधा होने पर ही सुस्पष्ट लिखे हुए आलेख स्वीकार किए जाएंगे।

5) अपने आलेख के साथ पूरा नाम, परिचय, पता, चित्र, ईमेल तथा मोबाइल नंबर/व्हाट्सएप नंबर अवश्य लिखें।

6) पत्रिका में अपनी लघु कथायें, संकलित नीति कथायें, बोध कथायें वगैरह भी भेज सकते हैं, जिनका उपयोग फिलर के रूप में किया जायेगा।

संवण दस्तूर : राठौड़ राजाओं का विश्वास और इतिहास

निशा भारद्वाज

इस शोध पत्र द्वारा मध्यकालीन मारवाड़ राज्य के राठौड़ राजाओं का संवण दस्तुर में विश्वास और शाही शासन व्यवस्था में इनके राजनैतिक उपयोग की सकंल्पना को प्रस्तुत किया जाएगा। मध्यकालीन मारवाड़ राज्य में शकुन को 'संवण' कहा जाता था। राठौड़ राजाओं ने शकुन परम्परा के धार्मिक-सामाजिक महत्व के कारण, इनका राज्य स्थापना से लेकर प्रशासनिक कार्यों में शकुन देखने की राजनैतिक परम्परा को कायम किया था। इस पत्र द्वारा राठौड़ राज्य संकल्पना संस्थापक राव चूण्ड़ा (1383-1423 ई.) से लेकर राजा मानसिंह (1803-43 ई.) का संवण या शकुन परम्परा में विश्वास यानि राजकार्यो में शकुन निकालने की महत्ता और शकुन संरक्षण के लिए राजसी विधान स्थापना को प्रस्तुत किया जाएगा। इस लेख द्वारा निम्न प्रश्नों को जाँचा परखा जाएगा। शकुन क्या है? शकुन परम्परा के सम्पोषक राठौड़ राजा कौन-कौन थे? राठौड़ राजाओं और राठौड़ प्रशासकीय व्यवस्था से शकुन रीतियों का क्या सम्बन्ध था? शकुन परम्परा का राठौड़ इतिहास एवं राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा था?

मारवाड़ राज्य की भोगौलिक पहचान को स्थापित करने में राठौड़ राजाओं ने अनेक राजनैतिक समस्याओं का सामना किया था। शकुन के आधार पर घटने वाली राजनैतिक घटनाओं के शुभ-अशुभ परिणामों ने राठौड़ राजाओं के शकुन विश्वास को बल प्रदान किया था। शकुन (किसी घटना या प्राकृतिक संकेतों) द्वारा भविष्य में घटने वाली घटनाओं का पूर्व अनुमान लगाया जाता था। शकुन-शास्त्री होली, दीवाली और अक्षय-तृतिया पर शकुन देखकर शकुन सूत्रों द्वारा राठौड़ राजा से लेकर आम-लोगों को भावी घटनाओं के प्रति सचेत करते थे।

राठौड़ शासक शकुन परम्परा के सम्पोषक और स्वयं ज्ञाता थे। हकीकत बहियों के प्रलेखानुसार राठौड़ राजा, राजमहल में प्रवेश करने से लेकर प्रत्येक छोटे से छोटा कार्य शकुन निकलने के आधार पर करते थे।[1] राठौड़ राजा-महाराजा त्यौहार दिवस, शुभ मुहूर्त और त्योहार आयोजन विधि को शकुन निकलवाकर सम्पादित करते थे। शासक होली के डान्डे को शुभ मुहर्त में रखवाकर मंगलाते थे।[2] शकुन धारणा में भक्ति कारण राजघराना महिलाओं ने प्रत्येक कार्य को शुभ मुहूर्त में करने के लिए निजी पंडितों की सेवा ले रखी थी।[3] रानियाँ शकुनानुसार तालाब-मंदिरों के निर्माण तिथि के निर्धारण से लेकर, दशोटन, नजर-उतारन, प्रस्थान और सभी कार्य करती थी। राठौड़ राजाओं के लिए शकुन भाग्य-

सूत्र थे, जिनके आधार पर शासक अपनी भाग्य रेखाओं यानि शासन और प्रशासन की सफलता का निर्धारण करते थे।

राठौड़ां री ख्यातानुसार राठौड़ राज्य संस्थापक राव चूण्डा के पिता वीरम की मृत्यु के बाद विकट राजनैतिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था। बालक राव चूण्डा और उनकी माता मांगलियानी ने चारण आल्हा के घर पर रहकर मजदूरी की थी। राव चूण्डा चारण आल्हा के बछड़े चराता था। पशु चराई समय आराम फरमाने के लिए चूण्डा बछड़ों के आगे-पीछे के पैर बांधकर सो जाता था। लगातार कमजोर होते बछड़ों की कमजोरी की समस्या के कारणों को जानने के लिए चारण ने चूण्डा का पीछा किया तो देखा कि, निद्रित बालक राव चूण्डा के सिर पर एक भयानक काले सर्प ने अपने फन से छाया कर रखी थी। चारण आल्हा ने इस दृश्य के शकुन द्वारा राव की कुंडली में छत्रधारी राजयोग होने की घोषणा की थी।[4] शकुनशास्त्रियों के कहने पर ही राव चूण्डा ने दायचा मण्डोर किले पर विजय पश्चात दोबारा शुभ शकुन में चिरस्थायी राज्य की कामना में अपना राज्याभिषेक करवाया था।[5] राव चूण्डा ने अपनी राजनीतिक स्थिति मजबूत करने के लिए स्वप्न शकुन के आधार पर तुर्क व्यापारियों को लूटकर सोना और घोड़े प्राप्त किए थे।[6] राव चूण्डा ने इस धन द्वारा अपनी सैन्य स्थिति मजबूत कर राठौड़ राज्य संगठित किया था। राजनीतिक रूप से इस उथल-पुथल के काल में राव चूण्डा और भाटियों के बीच मण्डोर की धरती पर अधिकार को लेकर युद्ध छिड़ गया था। इस युद्ध में राव चूण्डा मारा गया था। भाटी योद्धाओं ने राव चूण्डा के मस्तक को उल्टा बांधकर राव मुख की प्रसन्नता को देखकर मसखरी की थी, उसी क्षण शकुनी केलण ने भविष्य में भाटी क्षत्रियों के राठौड़ों के चाकर बनने की भविष्यवाणी की थी,[7] जोकि राव मालदेव के शासनकाल में जाकर सच साबित हुई थी। इस प्रकार विपरीत परिस्थितियों में राज्य हस्तगन के लिए संघर्ष करने वाले राठौड़ रावों से लेकर भूमिपति राठौड़ों तक का शकुन परम्परा में गहन विश्वास था। राव सीहा तो स्वयं ही शकुन के ज्ञाता था।

राव उदैभाण चांपावत री ख्यातानुसार राव सीहा ने अपनी रानी की गर्भ आंतों के झाड़ों पर लिपट जाने के स्वप्न शकुन को सच साबित करने के लिए रात भर रानी को कोड़े मारकर जगाए रखा, ताकि राठौड़ वंश का मारवाड़ भूमि पर स्थायी शासन स्थापित हो सके।[8] इसी प्रकार राव कान्हड़ देव को शकुनियों ने कहा था, गाँव सलखा में जाकर वास करो, आपके घर से दसों-दिशाओं में अधिकार जमाने वाले पुत्र पीढी दर पीढी पैदा होगें और सदा इस भूमि पर आपका अधिकार बढ़ता रहेगा।[9] इस प्रकार शकुन सूत्रों पर भावी सत्ता प्राप्ति के पूर्वाभास पर विश्वास कर राठौड़ राजाओं ने शकुन परम्परा के विकास में अहम् योगदान दिया था। शकुन के आधार पर राठौड़ों ने मारवाड़ भूमि की अलग सांस्कृतिक क्षेत्र (सूखी भूमि में लोक-कला के रंग भरकर और व्यापारिक परिवहन मार्ग) के रूप में पहचान स्थापित की थी। इतिहासकार बर्नाड़ कोहन के अनुसार सांस्कृतिक क्षेत्र धारणा लोगों के व्यवहार में विद्यमान होकर उनकी परम्परा, कर्मकाण्ड भ्रान्ति और त्यौहार रूप में सांस्कृतिक विरासत की वास्तविकता को साक्षात् परिणति प्रदान करती है।[10]

साहित्यिक ग्रन्थ सूरज प्रकाश के प्रलेखानुसार राठौड़ शासक राव जोधा ने जोधपुर में मेहरानगढ़ किले की नींव (चारणी करणी देवी के शकुन निकाले अनुसार) रखने से लेकर उसमें प्रवेश करने तक की प्रत्येक रस्म को शकुन के आधार पर किया था।[11] नैन्सी री ख्यात के अनुसार राव जोधा ने राज्य हस्तगन के 15 वर्षो के युद्धकालीन संघर्ष समय में भटकते हुए एक दिन यहाँ के प्रसिद्ध संत और लोक देवता हरभू सांखला के घर पर भोजन किया था। भोजन करने के पश्चात राव सहित सभी सरदारों के हाथ लाल हो गए थे, तब राव जोधा द्वारा विनती करने पर हरभू सांखला ने शकुन बताया कि, आज

आप जितनी धरती पर घोड़ा फिरा देगें, उतनी धरती आप के पुत्र-पोत्रों की होगी।[12] इस संत और लोक देवता हरभू सांखला ने शकुनों के आधार पर राव जोधा के भविष्य से सम्बंधित कुछ दोहे कहे थे, जोकि शकुन-बत्तीसी के नाम से विख्यात हैं।[13]

कुकड डावो सुर करे बोले वार विचार।
सुकन विचारे पंथियां, माने राज दुवार।।

इस दोहे में संत हरबू ने पथिक के प्रस्थान समय मुर्गे के बायीं ओर बांग देने को राजदरबार में सम्मान पाने का संकेत बताया है। राजस्थानी शोध संस्थान में रखी इस कृति में काली चिड़िया, मोर ध्वनि, पानी भरा मटका लेकर आती सुहागन स्त्री, तिलकधारी ब्राहाण का मार्ग में दिखना, गतिशील बैलगाड़ी का राह में मिलना को शुभ-शकुन बताया है।[14] इस संस्थान में शकुन पर लगभग 176 ग्रन्थ रखे हुए हैं। जैसे कि शकुन-बत्तीसी, शकुनावली, सकुनविचार, अंग फरूकण विचार, पक्षी सकुन विचार, आखातीज रा शकुन, शकुन-शास्त्र आदि। इन ग्रन्थों में प्रत्येक प्रकार के शकुन संकेतों पर विचार व्यक्त करके उनके शुभ-अशुभ परिणामों को बता रखा है।

शासन-सत्ता में हकदार स्वायत्त शासी सगोत्री भाई-बन्धुओं की समस्या से निजात पाने वाले राव मालदेव (1532-62 ई.) को शकुन विद्या प्राप्त थी। राव मालदेव ने शकुन विद्या पर शकुन शास्त्र नामक ग्रन्थ लिखा था, जिसकी प्रतिलिपि राजस्थानी शोध संस्थान, चैपासनी के हस्तलिखित ग्रन्थालय में सुरक्षित है। इस ग्रन्थ के प्रारम्भ में दिशा कोण पर विचार किया गया है। इसके पश्चात् 'काली चिड़ी रा सकुन', 'सगाई करण जावे तिणरा सकुन', 'झगड़ा करण रो सकुन', 'नवो वास कीजै न मूल गांव छाडीजै तिणरा सकुन', 'धणी कनै हालता रा संवण', 'सैहर माहे सुभ सकुन', व 'बारै कुण रो विचार' शीर्षक के अन्तर्गत राव मालदेव ने जो शुभाशुभ फल बतलाए उनका वर्णन किया गया है। राव मालदेव ने ज्यादातर स्वयं के अनुभव के आधार पर राजसी शकुन सूत्रों का वर्णन कर रखा है, जैसे कि अथ राजा नू मिलन रा शकुन, अथ कटक रा सवण, वेतु राड रा सवण, अथ वाहर चढण रा सवण, मैहलाण करण रा सवण, कामदार नुं काम लेवण रो सुकन, नवी ठोड कामदार अमल करण जाण तद रा सवण, कामदार कोई कैद में हुवै तद रा सवण और राजा नु राजथांन थी चालता रा सवण आदि।[15] इनके आधार पर राजा को प्रशासनिक कार्य, प्रस्थान, युद्ध और अधिकारियों की नियुक्ति करनी चाहिए। मालदेव द्वारा निर्धारित कई मान्यताएँ आज भी मारवाड़ की ग्रामीण जनता में प्रचलित हैं।

मूंदियाड़ री ख्यातानुसार राव मालदेव ने जैसलमेर के भाटियों से शत्रुता समाप्त करने के लिए उनकी कन्या उमादेवी भटियानी से विवाह करना तय किया था। परन्तु भाटियों ने गोठ समय मालदेव को मारने का षडयंत्र बनाया था, जिसकी जानकारी मिलने पर उमादेवी ने रांड (विधवा) हो जाने के ड़र से राधा पुरोहित से शकुन निकलवाया था। भटियानी रानी ने अपने सुहाग की रक्षा के लिए गुरू राधा पुरोहित द्वारा भाटियों के षड़यंत्र की खबर राव मालदेव के पास पहुँचवा कर उन्हें सचेत किया था। षड़यंत्र में विफल भाटियों से, राधा पुरोहित के जीवन की रक्षा के लिए मालदेव इनको जोधपुर ले आया था। इसी राधा पुरोहित के बेटे चंडु के कारण मारवाड़ में ज्योतिष विद्या और जोशी-वेदिया को दरबार में रखने का प्रचलन स्थापित हुआ था।[16] इस प्रकार मारवाड़ में राव मालदेव से राज-दरबार में शकुन विद्या और शकुन-शास्त्रियों को रखने की परम्परा स्थापित हुई थी, जिसका उनके उत्तराधिकारियों ने अनुसरण कर, शकुन विद्या को बढावा देकर आम-जन का विषय भी बना दिया था।

राणीमंगा भाटों की बही के अनुसार 17वीं शताब्दी में नागौर शासक राव अमरसिंह (राजा जसवन्त सिंह के बड़े भाई) की रानी भटियानी समसुख देवी के गर्भ से मूल नक्षत्र में पुत्र पैदा हुआ था। जिसके शकुनशास्त्रियों ने राव के लिए राजनीतिक रूप से अमंगलकारी होने की भविष्यवाणी

की थी। अतः अशुभ शकुन से बचने के लिए अमरसिंह ने अपने नवजात शिशु को नदी की धारा में बहा दिया था।[17] अमरसिंह को नागौर का शासन अधिकार और मुगल मनसबदार का ओहदा प्राप्त हुआ था। राठौड़ शासकीय वर्ग का शकुन प्रणाली में अटूट विश्वास था।

राजा जसवन्तसिंह (1638-78 ई.) के मरणोपरान्त पैदा हुए उत्तराधिकारी पुत्र अजीतसिंह (1678-1724ई.) का सरदारों ने दशोटण संस्कार तिथि के अनुसार दशहरे पर न करके शकुन अनुसार आगे बढ़ाकर सुरती बाग में पड़ाव डालकर चैत वदि में दशोटण भोज का आयोजन किया था।[18] ताकि उनके राजनैतिक जीवन पर किसी भी प्रकार का संकट न आए। राजा अजीतसिंह 28 साल के राजनैतिक निर्वासित जीवन के पश्चात् (बादशाह औरंगजेब की 1707 ई. में मुत्यु के बाद) जोधपुर गढ़ में प्रवेश करने लगा, तो शकुन शास्त्री जोशी गिरधर ने गढ़ में प्रवेश करने का मुहूर्त न होने की बात कही थी। अजीतसिंह ने निर्वासन दंश की पीड़ा के कारण जोशी गिरधर को ढोंगी कहकर गढ़ की दीवार में चुनवा दिया था।[19] लेकिन शकुन सच साबित (नए मुगल बादशाह बहादुरशाह के दोबारा मारवाड़ अधिग्रहण के लिए आक्रमण करने से) हुआ था, तब अजीत सिंह ने जोशी गिरधर के परिवार को भरण-पोषण के लिए गाँव पट्टा इनायत किया था। अजीतसिंह ने जयपुर के राजा सवाई जयसिंह संग मुगल दरबार में उपस्थित होकर मुगल प्रश्रय स्वीकार कर राज्य प्राप्त किया था।

अजीतोदय महाकाव्य के अनुसार कठिन जीवन परिस्थितियों कारण राजा अजीतसिंह का शकुन विद्या में अटूट विश्वास था। अजीतसिंह राखी के त्यौहार पर वेद-वाक्यों के ज्ञाता और शक्ति का पाठ करने वाले ब्राह्मणों से शुभ-मुहूर्त में राखी बंधवाकर उन्हें हाथी और गहने देकर सम्मानित करता था। सधवा ब्राह्मणियों से कुमकुम का टीका लगवाकर आशीर्वाद प्राप्त करते थे।[20] अजीतसिंह ने पुत्री सुरजकंवर के विवाह लग्न से लेकर विवाह की सम्पूर्ण रश्मों को भी शकुन निकलवाकर शुभ मुहूर्त में सम्पादित किया था।[21] अजीतसिंह के पुत्र बख्तसिंह ने भाई राजा अभयसिंह (1724-49 ई.) की मृत्यु के बाद भतीजे राजा रामसिंह (1749-51 ई.) की राजनैतिक नादानियों से तंग आकर जोधपुर गढ़ पर अधिकार कर लिया था। महाराजधिराज बख्तसिंह (1751-52 ई.) ने गढ़ में प्रवेश गुरू आत्माराम के निकाले शुभ-मुहूर्त अनुसार किया था।[22]

महाराजा श्री विजयसिंह री ख्यातनुसार मारवाड़ पर अधिकार को लेकर भाई रामसिंह से विजयसिंह (1752-94 ई.) का गृहयुद्ध आरम्भ हो गया था। गृहयुद्ध में रामसिंह की सहायता मराठा सेना ने की थी। युद्ध के समय बीकानेर के शकुनियों ने विजयसिंह को आज मराठा सेना से युद्ध फलदायी न होने की बात कही थी, परन्तु राठौड़ सरदारों की युद्ध करने की जिद्द के कारण विजयसिंह को पराजय का दंश झेलना पड़ा था।[23] इस कारण विजयसिंह की भी शकुन विद्या में अटूट श्रद्धा उत्पन हो गई थी। तब से विजयसिंह ने विवाह से लेकर पौत्र भीमसिंह और मानसिंह को शिक्षा के लिए गुरू के पास शुभ मुहूर्त में भेजा था।[24] शकुन देखने की परम्परा मारवाड़ में बहुत ज्यादा प्रचलित हो गई थी। कपड़ा-रा-कोठार बही से पता चलता है कि, आखातीज त्यौहार पर बिना मुहूर्त के सैकड़ों विवाह होते थे। नवविवाहित जोड़ों को राजा भीमसिंह (1794-1803 ई.) और उनकी रानियाँ भेंट और मंगलयम जीवन के आशीर्वाद देकर विदा करते थे।[25]

महाराजा मानसिंह री ख्यात के प्रलेखानुसार राजा मानसिंह पोकरण ठाकुर की निन्तर अपने खिलाफ की जाने वाली कारवाईयों से तंग आ गए थे। उन्होंने मुगल मीर खान से ठाकुर की हत्या का समझौता किया था। मुगल मीर खान ने मानसिंह के खिलाफ होने का ढ़ोंग करके सवाईसिंह एवम् अन्य विद्रोही सरदारों को गणगौर त्यौहार की गोठ पर आमन्त्रित किया था। पासवान गुलाबराय के हत्यारे सवाईसिंह

और उसके सहयोगी ठिकानेदारों को शकुन शास्त्रियों ने मुगल अमीर की गोठ में जाने से मना किया था। जिसका परिणाम सबकी धोखे से (नशे में मदमस्त होने पर इनके तम्बु की डोरियाँ कटवाकर उपर गिरवाकर आग लगवा दी थी) हत्या करना निकला था।[26] राठौड़ शासकीय वर्ग की शकुन विद्या में आस्था देखकर अधिकारियों और प्रशासकीय लोगों का भी इस विद्या में गहन विश्वास था, इसलिए ठिकाना बहियों में यत्र-तत्र इनके शकुन निकलवाने की जानकारियाँ प्राप्त होती है। जैसेकि पोकरण ठाकुर सवाईसिंह महल में प्रवेश करने से लेकर प्रत्येक कार्य शकुनशास्त्रियों के मुहूर्त अनुसार करता था। जैसे कि जिक्र है–

श्री सवाईसिंघजी रो लोडते रे डेरा सु आयो सु कागद में लिखियो मु. छजमलजी थे गुराँ रीधवीजी रे उपासरे जाय ने मोरत जोवाय ने लिखिजो सो उणा मोरत किलो दाखल हुवां। सो छजमलजी गुरां रे उपासरे जाय ने गुरां ने अरज कर मोरत जोयाय दियो सु सावण वद 1 रात घडी 4 गयां कीलो दाखल हुवणो सु पाछो कागद लिख ने ठाकुर सा ने मेलीयो। सा वद 1 ठाकुरां श्री सवाईसिंघजी साँमो साथ लोग गयो ने रात घडी 4 गयां ठाकुर साहब पोकरण गढ़ पधारिया, पहली पोल भैसो कीनो, श्री नागणेचिया रे खजरू कीनो।[27]

राजा मानसिंह की आयस देवनाथ में बहुत आस्था थी। मानसिंह जोधपुर के हक को भी गुरू देवनाथ (दीवाली तक यानि कार्तिक सुदि 6 तक जालौर किला खाली न करना तथा राजा भीमसिंह की अचानक कार्तिक सुदी 4 को मृत्यु के कारण राज्याधिकार मिलना) का प्रसाद मानते थे।[28] इसी श्रद्धा का फायदा उठाकर आयसों ने मारवाड़ के सम्पूर्ण प्रशासन तंत्र पर अधिकार कर लिया था। आयसों की मनमानी देखकर उमराव अखैचंद ने राज्य कार्यो पर स्वयं का नियन्त्रण स्थापित करने के लिए आयस भीमनाथ के साथ मिलकर राजा मानसिंह के खिलाप षड़यंत्र करना शुरू कर दिया था। रानी चावड़ी भी पुत्र छतरसिंह को युवराज बना देने की शर्त पर इस योजना में शामिल हो गई थी। परन्तु उनकी इस योजना में सिंघवी गुलराज बाधक था। योजना के तहत रानी चावड़ी ने बहाना बनाकर गुलराज को मिलने के लिए महल बुलवाया था। शकुनियों ने गुलराज को गढ़ में प्रवेश करने से मना किया था। परन्तु सिंघवी कुछ देर बाद वापस आने की बात कहकर महल में चला गया था। षड़यंत्रकारियों ने सिंघवी को महल में कैद कर उसको मार दिया था। उसकी लाश को कपड़े में लपेटकर गढ़ से नीचे फिकवा दिया था। जिसके परिणाम में मानसिंह को शासन कार्यो को छोड़कर एकांतवाश में प्रवेश करना पड़ा था।[29]

निष्कर्ष: इस प्रकार अन्त में कहा जा सकता है कि, राठौड़ राजा शकुन परम्परा में आस्था प्रकट करके इस विद्या के संरक्षक बन गए थे। राव मालदेव ने इस विद्या के संरक्षण के लिए जोशी-वेदिया लोगों को राज-दरबार में रखना आरम्भ किया था। राव ने स्वयं इस विद्या पर अपने निजी शकुन अनुभवों पर एक ग्रन्थ लिखा था। राठौड़ राजा अपना प्रत्येक सामाजिक-राजनीतिक (राजतिलक, प्रस्थान, सगाई-विवाह, युद्ध, राजकार्य) कार्य शकुन आधार पर करते थे। शकुन, पशु-पशियों, हवा, औरत के अंग फड़कन और मौसम की प्रवृति के आधार पर ज्ञात किए जाते थे। विद्वान मुनस और गेरोबी के अनुसार शकुन प्रभाव का कारण कुछ विशेष (विशेष लक्षण) घटनाऐं होती हैं।[30] होली के त्यौहार पर चलने वाली वायु की दिशा से भी शकुन निकाले जाते थे, जैसे :-

पूर्व वाय वहंतो जोय, तिडी मुसा नहचे होय।
अगन कुणं रो वाजे वाय, लाय चालौ का लट खाय।।
उतर वाय वहतौ जाय, परजा दुख न देखे कोय।
भलो पवन जांणे, इसांण, घर-घर मंगल होय कल्याण।।[31]

राठौड़ राजा राव जोधा ने भी मयूरध्वज पहाड़ी पर किला की नींव रखते समय दो जिंदा लोगों को इसकी नींव में दफन करवाया था, ताकि मरुभूमि पर राठौड़ राजाओं का शासन चिरकाल तक बना रहे। सूखी अकालग्रस्त भूमि के स्वामी होने के कारण निरन्तर समस्याओं में घिरे होने के कारण राठौड़ राजा

अपना प्रत्येक कार्य शकुन निकलवाकर करते थे। इसी कारण वे शकुन परम्परा के सम्पोषक बनकर उभरे थे।

ग्रन्थ सूचीः

1. जोधपुर हकीकत बही, बही न. 1, वि.स. 1821-30 और बही न. 2, वि.स. 1831-40, बीकानेर राज्य अभिलेखागार, राजस्थान.
2. जोधपुर हकीकत बही, बही न. 1, वि.स. 1821-30, पत्र संख्या, 266.
3. महाराजा श्री मानसिंघ साहब के राजलोक श्री कछवाही साहबां की सरकार तालुके नोरा रो रोजनामो, वि.स. 1875 और महाराजा मानसिंह की पड़दायत श्री परम अखराय जी की सरकार तालकै जमा खर्च रोजाना, वि.स. 1915, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, जोधपुर.
4. राठैड़ां री ख्यात, भाग-1, संपा, हुक्मसिंह भाटी, (चैपासनी-जोधपुर, इतिहास अनुसंधान संस्थान और राजस्थानी ग्रन्थागार, 2007), पृष्ठ संख्या, 27-8, मुहणौत नैणसी री ख्यात, भाग-।।, संपा, बदरीप्रसाद साकरिया, (जोधपुर, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1961), पृष्ठ संख्या, 306-07, मुहणौत नैन्सी, मारवाड़ परगना री विगत, भाग-।, (जोधपुर, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1968), पृष्ठ संख्या, 21-2, जोधपुर राज्य की ख्यात, संपा, रघुवीर सिंह एवं मनोहर सिंह राणावत, (नई दिल्ली और जयपुर) भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् और पंचशील प्रकाशन, (1988), पृष्ठ, 36 और मालाणी का इतिहास, संपा, बी.एल. भादानी, (चुरू) राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति, (1999), पृष्ठ, 38.
5. वही, पृष्ठ संख्या, 308-09.
6. जोधपुर राज्य की ख्यात, संपा, रघुवीर सिंह एवं मनोहर सिंह राणावत, पृष्ठ, 37.
7. राठैड़ां री ख्यात, भाग-।, संपा, हुक्मसिंह भाटी, पृष्ठ, 315.
8. राव उदैभाण चांपावत री ख्यात, भाग-।।, संपा, मनोहरसिंह राणावत, (सीतामउ) श्री नटनागर शोध संस्थान, (2006), पृष्ठ संख्या, 16-7, अजीत विलास, संपा, शिवदान बारहठ, (जोधपुर, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1984), पृष्ठ, 2 और मुहणौत नैणसी री ख्यात, भाग-।।, संपा, बदरीप्रसाद साकरिया, पृष्ठ संख्या, 274-75.
9. मारवाड़ का सांस्कृतिक इतिहास, डां. विक्रमसिंह राठैड़, (जोधपुर, राजस्थानी ग्रन्थागार), 1996, पृष्ठ, 2.
10. बर्नाड़ कोहन, (रीजन्स सब्जेक्टीव एण्ड ओब्जेक्टीव) देयर रिलेशन टू द स्टडी ऑफ मोडरन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सोसाइटी (संपा, रोर्बट. आई. केन, रीजन्स एण्ड रीजनल्जिम इन साउथ एशियन स्टडीज) एन एक्सप्लोटरी स्टडी, (ड्यूक यूनिवर्सिटी, 1967), पृष्ठ संख्या, 5-7.
11. करनीदान जी, सूरज प्रकाश, भाग-।, (जोधपुर, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1883), पृष्ठ, 251. **मेहरानगढ़ किला स्थान पर एक सर्प कुण्डली मारकर अपनी पूछ को मुँह में दबाकर बैठा था, जिसको शकुन-शास्त्रियों ने स्थायी राज्य आधार का संकेत माना था।**
12. मुहणौत नैणसी री ख्यात, भाग-।।।, संपा, बदरीप्रसाद साकरिया, पृष्ठ संख्या, 4-7.
13. मारवाड़ का सांस्कृतिक इतिहास, डां. विक्रमसिंह राठैड, पृष्ठ, 2.
14. परम्परा, संपा, हुक्मसिंह भाटी, (चैपासनी-जोधपुर, राजस्थानी शोध संस्थान, 2008), पृष्ठ संख्या, 78-80.
15. देखिए वही, पृष्ठ संख्या, 59-75.
16. मूंदियाड़ री ख्यात, संपा, विक्रमसिंह भाटी, (चौपासनी-जोधपुर, इतिहास अनुसन्धान संस्थान, 2005), पृ.सं., 45-46.
17. राणीमंगा भाटों की बही, संपा, महेन्द्रसिंह नगर, (जोधपुर, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, 2002), पृष्ठ, 50.
18. जोधपुर हुकुमत री बही, संपा, सतीश चन्द्र और रघुबीर सिंह और जी.डी. शर्मा, (मेरठ और नई दिल्ली, मीनाक्षी प्रकाशन, 1976), पृष्ठ, 96.
19. मूंदियाड़ री ख्यात, संपा, विक्रमसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 166-67. **बाद में राजा अजीतसिंह ने जोशी गिरधर के चुनवाए गए स्थान पर सम्मान पूर्वक 'गिरधर रा फलसा' नाम से मेहरानगढ़ किले का प्रवेश द्वार बनवा दिया था।**
20. जगजीवन भट्ट, अजीतोदय महाकाव्य, संपा, स्वर्गीय श्री नित्यानंद दधीच, (जोधपुर, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, 1980), पृष्ठ संख्या, 141-42.
21. महाराजा अजीतसिंघ से तख्तसिंघजी तक (पुत्रियों का विवाह वर्णन), बही न. 833, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर.
22. मारवाड़ राज्य री ख्यात, संपा, हुकमसिंह भाटी, (जोधपुर, राजस्थानी शोध संस्थान और महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध केन्द्र, 2000), पृष्ठ, 26.
23. महाराजा श्री विजयसिंह री ख्यात, संपा, ब्रजेशकुमारसिंह, (जोधपुर, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1997), पृ.सं. 4-5.
24. मारवाड़ राज्य री ख्यात, संपा, हुकमसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या 11-141.
25. कपड़ा रे कोठार री बही, बही न. 20, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर.
26. महाराजा मानसिंह री ख्यात, संपा, नारायणसिंह भाटी, (जोधपुर, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, 1979), पृष्ठ संख्या, 77-78. **मुगल अमीर मीर खान ने सरदार सवाईसिंह, पाली के ग्यानसिंह, बगड़ी के केसरीसिंह**

और चंड़ावल के बख्शीराम सरदारों के मस्तकों को बोरियों में भरकर ऊँटों के उपर लादकर राजा मानसिंह के दरबार में भेज दिया था, दरबार में ही इनकी धृष्टता पर कुपित मानसिंह ने इनके मस्तकों से विजय दशमी पर पोलो का खेल बीच चौक में खेलने का हुक्म दे दिया था, परन्तु राजनीतिक मर्यादाओं कारण अन्य सरदारों ने ऐसा नही होने दिया था।

27. हुक्मसिंह भाटी, (पोकरन ठिकाने, जोधपुर में संग्रहित सामग्री और उसका महत्व), भँवर भदानी, राजस्थान के ठिकानों का उद्‌भव एवम् ठिकानेदारों के अधिकार, एक सर्वेक्षण, (उदयपुर, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, भूपाल नोबल्स संस्थान), पृष्ठ संख्या, 132-46.
28. राठौड़ां री ख्यात, संपा, हुकमसिंह भाटी, पृष्ठ, 690.
29. महाराजा मानसिंह री ख्यात, संपा, नारायणसिंह भाटी, पृष्ठ संख्या, 107-110.
30. के.जी.एम मुनस, पैट्रिय्क रायस्टन, डी.ई गरोबी एण्ड डी.जी. अल्तमन, परोगनोसिस एण्ड परोगनोस्टिक रिसर्च, वट, वाय एण्ड हाव, (ब्रिटिश मेडिकल जर्नल, वोल्यूम. 338, मई 2009), पृष्ट संख्या, 1317-20.
31. डॉ. विक्रमसिंह राठौड़, मारवाड़ का सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ संख्या, 3.

■

हाउस न. 708
ग्राम- टिकरी कालां
नई दिल्ली-110041
मो. 9599560417

राष्ट्र का मंगल

जिस युग में हम जी रहे हैं, वह बाजार की जकड़ में है। भौतिक वस्तुएं ही व्यक्ति को सब कुछ लगने लगी हैं। व्यक्ति ग्राहक मात्र होकर रह गया है, इसलिए कथा तो सिर्फ एक बहाना है। वास्तविकता में कथा के माध्यम से हर साधक से जागना है और संस्कारों की फसल उगाना है। समाज में जितनी भी प्रतिकूलताएं और प्रकृति में विकृतियां हैं, उन सबका मूल कारण संयम का न होना है। ज्यादा पाने की इच्छा ने असंतुलन को जन्म दिया है। इसका समाधान है कि संयमित जीवन जिया जाये। जैसा कि मिट्टी का घड़ा आकाश की ओर पीठ और धरती की ओर मुख करके पड़ा रहे, तो चाहे कितनी भी वर्षा हो जाये, वह घड़ा नहीं भरेगा। उसी प्रकार क्रोध कामना की कोख से उपजता है। यदि कोई कामना अधूरी रहे तो व्यक्ति आपा खो बैठता है, इसलिए जीवन में संतुलन बनाये रखना आवश्यक है जिस प्रकार देवी पार्वती ने सती के रूप में अपने पिता से मिले अपमान से प्रभावित होकर प्राण त्याग दिये थे, इसलिए कामनाओं पर काबू आवश्यक है। मनुष्य आदर के प्रति अत्यधिक आसक्त होता है। वह सदैव आदर चाहता है। इसका कारण यह है कि उसके भीतर ईश्वर का अंश है, इसी कारण सम्मान की इच्छा जागृत होती है। यदि आप आदर चाहते हैं, तो आदर बोइये, क्योंकि आदरणीय वही होते हैं, जो दूसरों को आदर देते हैं। जो राष्ट्र का मंगल करें, वही राम है। जो लोकमंगल की कामना करें, वही राम है। सबसे आदर्श और मर्यादित व्यक्तित्व ही श्री राम है। विपरीत परिस्थितियों में भी उन्होंने मर्यादा नहीं छोड़ी और वानर जाति को साथ लेकर लंकापति रावण का दमन किया। जहां नीति है, धर्म है, वहां श्रीराम साथ हैं, इसलिए संसार में उनसे बड़ा आदर्श पुरुष दूसरा कोई नहीं हुआ। नगर के मकानों, चौराहों से लेकर दूरदराज की चौपालों तक रामायण की चौपाई और दोहे वर्ष भर गूंजते रहते हैं। भगवान श्रीराम की महिमा और हनुमान की श्रद्धा जन-जन में स्थापित होने का यह प्रत्यक्ष उदाहरण है।

- अवधेशानंद गिरि

विद्वान और धर्मात्मा पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की कीर्तिगाथा

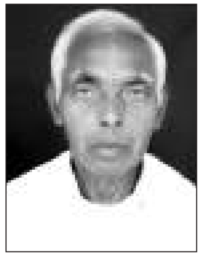

डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'

बंग भूमि के सुविख्यात समाज सुधारक, शिक्षाविद् और मानव हितैषी देवता पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की दो सौवीं जन्मशती (26.9.1820 ई. 14.9.2020) पिछले वर्ष मनाई गई) की दो सौवीं जन्मशती वर्ष है।) विद्यासागर जीवनी पुस्तक के प्रणेता श्री चण्डीचरण वन्द्योपाध्याय ने उन्हें 'मनुष्य देह धारी देवता' कह कर अभिहित किया। बंग प्रदेश के विज्ञ पुरुषों ने एक स्वर से कहा- 'विद्यासागर पितृभक्त और मातृभक्त थे। वे केवल विद्यासागर' ही न थे किन्तु 'दयासागर' भी थे। उन्होंने अपने उदाहरण से लोगों को प्रत्यक्ष दिखला दिया कि मनुष्य अपनी विद्या के बल से लोक में धन और कीर्ति दोनों प्राप्त कर सकता है और मरने के अनन्तर अपना नाम सदा के लिए छोड़ जा सकता है। इसी संदर्भ में अंग्रेजी भाषा के विख्यात कवि हेनरी वर्डसवर्थ लांग फेलो की प्रसिद्ध कविता A Psalm of Life में उन्होंने महापुरुषों के जीवन की सफलता के तत्व बतलाए हैं। कविता नौ चरणों में रचित है। कवि ने सातवें चरण में 'संसार से विदा होने से पूर्व अपनी अमरकीर्ति के पद चिन्ह समय की बालुका पर छोड़ सकते हैं। इस संबंध में कवि की भावना के उद्गार हैं-

'Lives of greatmen all remind us
We can make our lives sub lime;
And departing leave behind us
Foot prints on the sands of time'
भावानुवाद - सज्जन चरित सिखाते, हम भी,
कर सकते हैं निज उज्ज्वल।
जग से जाते समय रेत पर,
छोड़े चरण चिह्न निर्मल।

धन्य है यह भारत भूमि, धन्य है बंग भूमि, धन्य है मेदनीपुर जिला, धन्य है वीरसिंह गांव जहां निष्कलंक ब्रह्म परायण ब्राह्मण परिवार में 26 सितम्बर 1820 ई. को ममतामयी, वात्सल्यमयी, स्नेहमयी माता भगवती देवी की पावन कुक्षि से प्रथम पुत्र रत्न अवतरित हुए थे। आप के पिता का नाम ठाकुरदास वन्द्योपाध्याय था। वे कलकत्ता में आठ रुपये महीने पर नौकर थे। आप के बचपन का नाम ईश्वर चन्द्र रखा गया।

तो हां, 'गुदड़ी के लाल' और 'कुदरती लाल' ईश्वर चन्द्र शर्मा अपनी प्राकृतिक मुस्कान के साथ शुक्लपक्ष की चन्द्रकला की भांति बढ़ने लगा। उसकी शरीर कांति

अलौकिक तेज से परिपूर्ण थी। उसके मुंह पर असाधारण प्रतिभा प्रगट होती थी। उसने अपना शैशव धूलि के हीरक कणों में लोट-लोट कर, हंस खेल कर काटते हुए पांच वर्ष की आयु में विद्यारम्भ संस्कार हुआ। कहा जाता है कि वंश का इतिहास संस्कार की गरिमा में फलता और पनपता है, और फिर सदा अमर रहकर स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता है। ईश्वरचन्द्र बंगाल के संस्कृत व्यवसायी अध्यापक वंश में पैदा हुए थे। ईश्वर चन्द्र के बाबा और परबाबा दोनों ही प्रसिद्ध अध्यापक और विद्वान थे।

ईश्वरचन्द्र पठनावस्था में बड़े ही परिश्रमी, शांत, सुशील, निरहंकार, निर्भिक, निष्कलंक, निष्कपट और कुशाग्रबुद्धि थे। उसने ससम्मान विभिन्न परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में सर्वप्रथम पास की। वे इतने बुद्धिमान थे कि विद्यालय में भर्ती होने के अनन्तर ही इन्हें पांच रुपये महीने छात्रवृति मिलने लगी। कुछ दिनों में उनकी छात्रवृत्ति आठ रुपये हो गई। कई-कई परीक्षाओं में सर्वाधिक अंक आने पर इनको दो-तीन बार सौ-सौ रुपये इनाम मिला।

प्रतिभा की प्रथम झलक :

संस्कृत कॉलेज कलकत्ता में रहकर व्याकरण, काव्य, अलंकार, धर्मशास्त्र और न्याय आदि सभी शास्त्रों में निपुण हो गये। उल्लेखनीय है कि 1 अप्रैल 1839 ई. में उन्हें हिन्दू विधि अधिकारी के पद के लिए चुन लिया गया। जिसमें प्रमुख काम था विभिन्न न्यायालयों से संबद्ध यूरोपीय न्यायाधीशों के समक्ष हिन्दू कानून को स्पष्ट करना। परंतु पढ़ाई पूरी करने के लिए उन्होंने नौकरी करने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

अगाधे पांडित्य :

इनकी विद्या-बुद्धि, प्रतिभा और प्रत्युत्पन्नमति से प्रभावित होकर कॉलेज में अपनी-अपनी विद्या में पारंगत अध्यापकों ने मिलकर विद्याप्रेमी ईश्वरचन्द्र शर्मा को बीस वर्ष की आयु में 10 दिसम्बर, 1841ई. को विद्यासागर की महनीय उपाधि प्रदान की थी।

बंगभूमि के इस 'कुदरती लाल' और 'गुदड़ी के लाल' की ख्याति मात्र 20 वर्ष की आयु में अपने ढंग के निराले विद्यार्थियों में बुद्धिजीवियों के बीच सूर्य की तरह चमकी। ये अपनी निर्मल बुद्धि एवं सूझ-बूझ से सबों को प्रभावित किये रहते थे।

फोर्ट विलियम कॉलेज के प्रधान अध्यापक :

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के विशाल व्यक्तित्व के विभिन्न तत्वों का विश्लेषण करने पर हमें स्पष्ट विदित होता है कि उनके निर्मल एवं निष्कलुष हृदय में विद्यानुराग का स्थान सर्वोपरि था। उनके ज्ञान का क्षेत्र अत्यंत व्यापक था और उनकी विद्वत्ता अगाध। आप संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान के रूप में सुविख्यात थे। संस्कृत में आपने अनेक ऐसे ग्रंथों का प्रणयन किया था, जो अनुपम हैं।

कॉलेज छोड़ते ही पचास रु. मासिक पर आप अध्यापक हो गये। क्रमशः मासिक वेतन में वृद्धि होती रही। चार वर्ष के अनन्तर आप मदरसों के असिस्टेंट इंसपेक्टर हो गये। उस समय आपको पांच सौ रु. महीना वेतन मिलने लगा। उन दिनों बंगाल के छोटे लाटसाहब स्ताह में उन्हें एक बार बुला कर अनेक विषयों पर उनसे सम्मति लिया करते थे।

निर्लोभता की साकार मूर्ति :

विद्या के सागर ईश्वरचन्द्र शर्मा बड़े निर्लोभ थे। लोभ इन्हें स्पर्श न कर सका। एक समय वर्दमान के महाराज ने इन्हें पांच सौ रुपये एक दुशाला भेंट दिया परन्तु विद्या के जहाज ने उन्हें यह कह कर लौटा दिया कि ये रूपये और दुशाला आप निर्धन ब्राह्मणों को दे दीजिए।

विधवा विवाह के समर्थक :

उनके प्रयास से दिनांक 26 जुलाई 1856 ई. को विधवा विवाह कानून पास हुआ। विधवा विवाह का कानून पास हो जाने पर प्रथम विधवा विवाह की तैयारी के समय विद्यासागर को एक अलौकिक तृप्ति हुई थी। बंगाल में विद्यासागर की विजय का डंका बज गया। बंगाल के सामाजिक इतिहास में यह दिन सदा स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

पांडित्य की मूर्ति :

सन् 1864 ई. की 1 जनवरी को जर्मनी के लिपजिक नगर में विद्वानों की मंडली ने विद्यासागर

को सम्मान चिह्न देकर सम्मानित किया था। वह बहु सम्मान का परिचय देने वाला पत्र जर्मन भाषा में लिखा हुआ सुरक्षित है। पुनः 1864 में एशियाटिक सोसायटी (लंदन) ने उन्हें अपनी संस्था का मानद सदस्य बनाया। सन् 1867 ई. में विपन्न, रोग पीड़ित और अनाहार से क्लेश पा रहे दुःखी नर-नारियों ने उनको 'दयासागर' की उपाधि से विभूषित किया था। ब्रह्म समाज के नेता ने उन्हें 'देश हितैषी' कहकर अभिहित किया। किसी ने 'अबला बान्धव' भी कहा। विज्ञ पुरुषों ने एक स्वर से कहा- 'विद्यासागर पितृ भक्त और मातृभक्त हैं।'

सरस्वती पुत्र आशुतोष मुखर्जी को पुस्तक भेंटः

उल्लेखनीय है कि जनवरी, 1874 ई. में बालक आशुतोष स्वास्थ्य लाभ कर मथुरा से कोलकाता ट्रेन से आ रहा था। जिस डब्बे में बालक आशुतोष बैठकर एकाग्र मन से पुस्तक पढ़ रहा था उसी डब्बे में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी बैठे थे। अचानक आशुतोष की दृष्टि विद्यासागर पर पड़ी। उन्होंने तपाक से उनका चरण स्पर्श किया। बाद में मुगलसराय स्टेशन पर उतर कर विद्यासागर ने डेनियल डेफो रचित 'रॉबिन्सन क्रूसो।' पुस्तक खरीद कर उस पर लिखा– To Asutosh by Vidyasagar और अध्ययन प्रेमी आशुतोष को सस्नेह भेंट करते हुए कहा- My son, read this attentively. यही आशुतोष कालान्तर में कलकत्ता हाईकोर्ट का मुख्य न्यायाधीश, कलकत्ता विश्वविद्यालय का वाइस चांसलर और गणित शास्त्र के अद्‌भुत अध्येता, व्याख्याता और एम. ए. के परीक्षक हुए। उन्हीं आशुतोष को 'बंगाल टाइगर' कहा जाता है। अंग्रेजी सरकार ने उन्हें 'सर' की उपाधि से सम्मानित किया। इन्हीं के प्रयास से सन् 1919 ई. में कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिंदी में एम.ए. करने का प्रस्ताव पास किया गया था और सन् 1921 में नलिनी मोहन सन्याल (जन्म 1861 ई.) ने एम.ए. हिन्दी परीक्षा में स्वर्णपदक प्राप्त कर गौरव प्राप्त किया।

सन् 1877 ई. में तत्कालीन गवर्नर जनरल ने पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को 'विधवा विवाह' के हामी दल का अगुवा और समाज संस्कारक हिन्दुओं का संचालक मानकर प्रशंसा-पत्र दिया था। सन् 1880 ई. में उन्हें सी. आई. ई. (काम्पेनियन ऑफ इंडियन ऐम्पायर) की उपाधि-प्रदान की गई परन्तु वे स्वयं यह सम्मानित उपाधि प्राप्त करने नहीं गये। सन् 1883 ई. में पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर ने उन्हें अपना सदस्य बना लिया। सन् 1882 ई. में पंजाब वि. वि. की स्थापना हुई थी।

सर गुरुदास बनर्जी द्वारा उपहार ग्रहण : ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्राध्यापक की हैसियत से कहीं पर विदाई उपहार नहीं लेते थे। किन्तु कलकत्ता हाईकोर्ट के न्यायाधीश और कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रथम भारतीय वाइस चांसलर मातृभक्त माननीय सर गुरुदास बंद्योपाध्याय (जन्म-1844 ई.) ने अपनी माता के श्राद्ध के पावन अवसर पर एक चांदी के गिलास पर एक श्लोक खुदवा कर उनको उपहार में सादर सप्रेम भेंट दिया था। मातृभक्त पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर मातृभक्त संतान के इस प्रेमोपहार को अस्वीकार न कर सके। उन्होंने उसे प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया। चांदी के गिलास पर यह श्लोक खुदा था–

'पान पात्र मिदं दत्तं विद्यासागर शर्मणो।
स्वर्ग कामनया मातुगुर्रुदासेन श्रद्धया।'

बंगाल के प्रसिद्ध कवि माइकेल मधुसूदन दत्त को दस सहस्त्र रुपये देकर इन्होंने उनको इंगलैंड में भूखों मरने से बचाया था। कवि ने उनके प्रति उद्‌गार प्रगट किया था। अपने हार्दिक उद्‌गार में कहा था– 'जिस व्यक्ति से मेरी गुजारिश है वह ऋषि-मुनियों जैसी मेधा रखता है, उसका साहस अंग्रेजों जैसा है और उसका दिल एक बंगाली माँ जैसा कोमल है।'

बंगभूमि के महान शिक्षाशास्त्री पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर 'पर उपदेश कुसल बहुतेरे' नहीं थे, वरन् वह 'जे आचारहिं ते नर न घनेरे' थे। उनका विद्या व्यसन हम लोगों के लिए आदर्श है। वे अहर्निश विद्याध्ययन में तल्लीन रहते थे। दिन-रात पुस्तक लिखने में निरत रहा करते थे। इसी का यह फल है कि उनकी कलम से संस्कृत में 17 ग्रंथ, बंगला में

30 ग्रंथ और अंग्रेजी में 5 ग्रंथ लिखे गये। उनके अक्षर मोती के समान गोल और सुडौल होते थे। उल्लेखनीय है कि अध्ययन काल में सुलेख पर उनको सन् 1826 से लेकर सन् 1838 ई. तक लगातार पुरस्कार प्राप्त होता रहा। कॉलेज छोड़ने पर उन्होंने राष्ट्रभाषा हिन्दी भी सीख ली थी।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस से भेंटवार्ता :

दिनांक 5 अगस्त, 1882 ई. की आकस्मिक घटना है। मनुष्य देह धारी देवता पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के लिए एक महान उपलब्धि थी कि स्वयं दक्षिणेश्वर स्थित मां भगवती काली के अनन्य उपासक स्वामी रामकृष्ण परमहंस (1836-1886) जो अहर्निश मंदिर में बैठे अश्रुपूर्ण नेत्रों से गाते हुए 'माँ' को भजन सुनाया करते थे। जो ईश्वरत्व की सजीव मूर्ति थे, वे अनायास अपनी आध्यात्मिक मस्ती में आकर बैलगाड़ी पर सवार होकर उनसे भेंट करने गये। उन्हें देखते ही परमहंस जी ने कहा, 'वाह! आज तो आखिरकार महासागर में आ ही गया। इससे पहले मैंने केवल नहर, दल दल और नदी को ही देखा था, पर आज महासागर से मेरी मुलाकात हो गयी। विद्या के जहाज पं. विद्यासागर ने तपाक से कहा,'तो फिर थोड़ा सा खारा पानी भी ले जाइये।' स्वामीजी ने तत्काल मुस्कराकर उत्तर दिया, 'ओह! खारा पानी कैसे? खारा पानी नहीं हो सकता। आप तो अज्ञान के समुद्र नहीं हो. आप विद्या के सागर हो, गाढ़े दूध का महासागर हो।'

इन द्वय दिव्य आत्माओं में आकर्षण शक्ति थी। विद्यासागर के चरित्र की पवित्रता, अगाध विद्वत्ता की सुरभि स्वामी जी को खींच लायी। उनमें अद्‌भुत तेज और विचित्र आकर्षण समाहित था। उस दिन द्वय आत्माओं की अभिलाषा पूर्ण हुई। किसी ने ठीक ही कहा है–

फरिश्ते से बढ़कर इंसान होना है,
मगर इसमें पड़ती है मिहनत जियादा।

मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा आकर्षण है- उसका महान व्यक्तित्व जिस तरह बिजली में चमक, चन्द्रमा में चांदनी, सूर्य में किरण, फूल में सौंदर्य, वन में हरियाली पक्षियों में रंग और रमणी में रूप का आकर्षण होता है, उसी तरह मनुष्य में उसके व्यक्तित्व का आकर्षण है। जिस मनुष्य का व्यक्तित्व जितना ही ऊंचा और शानदार होगा, उसका आकर्षण उतना ही तेज और प्यारा होगा।

विद्या सागर के विशाल एवं विलक्षण व्यक्तित्व, उनके दिव्य तपश्चर्यापूर्ण जीवन, उनकी अलौकिक ज्ञान-साधना का सम्यक परिचय इस संक्षिप्त लेख में देना नितान्त असंभव है। इन पंक्तियों के द्वारा, उनके अद्‌भुत जीवन-दर्शन एवं अनुपम साहित्य-सेवा का आभास मात्र दिया गया है। ऐसे प्रतिभाशाली और प्रभावशाली विद्वान, परोपकारी विद्यासागर 71 वर्ष की अवस्था में 29 जुलाई, 1891 ई. में, इस असार संसार को छोड़कर परलोक वासी हुए। पवित्रात्मा और पुण्यात्मा विद्यासागर के निधन पर कलकत्ता हाईकोर्ट के विद्वान न्यायाधीश सर गुरुदास बनर्जी ने मेट्रोपोलिटन कॉलेज की शोक सभा में सभापति की हैसियत से कहा था– 'He was second to none except one great Ram Mohan Roy.'

मैं ऐसे परम पवित्र एवं विचित्र चरित्र वाले विद्वान और धर्मात्मा पं. विद्यासागर के चरण कमलों को, सिर झुका कर श्रद्धा-भक्ति से द्वितीय जन्म शताब्दी के पावन अवसर पर कोटिशः नमन करता हूं।

■

– रामतीर्थ कुंज
राकोडीह, वाया-कोशी कॉलेज
खगड़िया (बिहार) 851205
मो. 9006664042

केवल अपने लिए मांगने वाला भिखारी कहलाता है, किंतु सबके लिए मांगने वाला साधु कहलाता है।

- महादेवी वर्मा

मीराँबाई और तेलुगु की कवयित्री मोल्ला का तुलनात्मक विश्लेषण

डॉ. आन्जनेयुलु

साधना, भावना, भक्ति , संप्रदाय, गुरु , जन्म-तिथि, जन्म-स्थान, विवाह, संघर्ष, व्यक्तिगत जीवन के विषय में अपूर्ण जानकारी जैसी कई समानताएं हिंदी की कवयित्री मीराँबाई और तेलुगु की भक्त कवयित्री मोल्ला में दिखाई देती हैं। मीराँबाई अपनी जन्म तिथि के संबंध में कवयित्री अपनी और से कोई भी प्रमाण नहीं देती हैं। मीराँबाई की रचनाओं के आधार पर मुंशीदेवी प्रसाद मीराँ का जन्म 1505-1551 के बीच मानते है। राजस्थान के अन्य इतिहासकार हरिविलास शारदा और गौरीशंकर ओझा ने एक मत में मीराँ का जन्म सन् 1555 के आस-पास निश्चित किया है। डा. रामकुमार वर्मा और परशुराम चतुर्वेदी ने इसी तिथि को स्वीकार किया है। कन्हैया लाल मुन्शी और वियोगि हरि ने इनका जन्म सन् 1557 माना है। किंतु यह भी सही प्रमाणित नहीं होता है क्योंकि 'भक्तमाल' में मीरा के विवाह के समय की अवस्था बारह वर्ष लिखी गई है जो संवत् 1555 के निकट है।

जन्म स्थान के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान मीराँबाई का जन्म स्थान जोधपुर का बाजोली ग्राम मानते हैं और कुछ लोग कुड़की को मानते है। मीराँ के विवाह के संदर्भ में भी विभिन्न विचार है। उनका विवाह कब और किससे हुआ, इस संदर्भ में आलोचकों में मतभेद है। मीराँ के विवाह के संदर्भ में तीन मत प्रचलित हैं। 1.मीराँ का विवाह राणा कुंभा से हुआ। 2. मीराँ का विवाह राणा कुंभा के कुंअर से हुआ। 3. मीराँ का विवाह महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज से हुआ। यहाँ तीसरा मत अधिक सही सिद्ध हुआ है। लेकिन उनका वैवाहिक जीवन बहुत अल्पकाल का रहा।

मीराँ के गुरु कौन है, इसमें भी मतभेद है। मीराँ पर कार्य करने वाले विद्वानों ने मीराँ के गुरुओं के नाम भिन्न-भिन्न बताए हैं। अधिकांश विद्वान ने प्रसिद्ध भक्त रैदासजी को मीराँ का गुरु मानते हैं। कुछ अध्ययनकर्त्ता जीव गोस्वामीजी को तो कोई रामानन्दजी, हरिदासजी, माधवपुरीजी', चैतन्य महाप्रभु, देवजी और यहाँ तक कि एक विद्वान ने विश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक जांभोजी को मीराँ का गुरु माना है, लेकिन इससे हम यह भी अनुमान कर सकते है कि मीराँ का कोई धार्मिक गुरु नहीं था अथवा मीराँ ने किसी भी सन्त को अपने गुरु के रूप में स्वीकार नहीं किया।

'मोल्ला रामायण' की रचयिता आटुकूरी मोल्ला तेलुगु साहित्य की प्रथम कवयित्री हैं। कवयित्री मोल्ला के जन्म और मृत्यु का समय, माता-पिता, जाति आदि के विषय में विद्वानों में मतभेद है। अंतर साक्ष्य के आधार पर मोल्ला आटुकूरी केसन शेट्टी की वर

पुत्री मानी जाती है। केसन शेट्टी बड़े शिव भक्त थे तो मोल्ला राम की परमभक्तिन थीं। इस तरह पिता और पुत्री दोनों के अंतरंग में शिव-केशव की अद्वैत भक्तिका भाव पल्लवित, पुष्पित हुआ था। कवयित्री मोल्ला यद्यपि स्वयं पढ़ी-लिखी नहीं थी किंतु भगवान मल्लेश्वर के वरप्रसाद से ही उन्हें काव्य रचना करने की शक्तिप्राप्त हुई। केसन शेट्टी की पुत्री के रूप में पलकर बड़ी होने के कारण कुछ आलोचक उन्हें वैश्य कन्या मानते हैं परंतु जनश्रुति के अनुसार मोल्ला निम्न जाति की कुमारिन हैं और राज दरबारों के प्रभाव में न पड़कर उन्होंने अपने काव्य को नरांकित ना करके भगवान राम को समर्पित किया।

उपलब्ध जानकारी के अनुसार मोल्ला का जीवन काल सन् 1420 से लेकर 1540 के मध्य का माना जाता है। वे नेल्लूर मंडल के आत्मकूरु नामक ग्राम की निवासिनी थी और विजयनगर के श्री कृष्णदेवराय के समकालीन थी। कहा जाता है कि राजा कृष्णदेवराय के दरबारी कवि स्त्री एवं शूद्र जाति तथा बाल-विधवा होने के कारण मोल्ला का अपमान किया करते थे। विधवा स्त्री तथा राम-भक्त होने के कारण उन्हें कई संकटों का सामना करना पड़ा। इससे यह विदित होता है कि तत्कालीन समाज कितना अव्यवस्थित था। दक्षिण में धार्मिक दृष्टि से वीरशैव, शैव तथा अद्वैत के आवेश कुछ कम होते जा रहे थे और शैव-वैष्णव में समरसता आ गयी थी। इसके राजनीतिक उलट-फेर भी कारणभूत हैं। मीराँ की तरह ही समाज में मोल्ला को खूब सताया गया। निम्न जाति की स्त्री एवं विधवा होने के कारण न तो वह मंदिर में प्रवेश कर सकती थी और न राम का नाम ले सकती थी। जनश्रुति है कि मोल्ला ने शपथ लेकर सात दिनों में रामायण की रचना कर दिखायी। इससे समाज की दुष्ट शक्तियों ने कुपित होकर मोल्ला के सामने ही उनके पिता केसन शेट्टी का वध किया था। इन संकटों में भी मोल्ला ने रामभक्ति के सहारे अविचलित होकर रामायण को पूरा किया।

मीराँ के बाल्य जीवन के विषय में कुछ जनश्रुतियां प्रचलित हैं, कहा जाता है कि मीराँ गिरधर गोपाल के प्रेम में इतनी आसक्त हुई कि मन ही मन उन्होंने अपने आराध्य देव का पति के रूप में वरण कर लिया। बालिका मीराँ ने किसी बारात को देख कर अपनी मां से कहा मेरा वर कौन है? मां से पूछा। मां ने अबोध बालिका का मन रखने के लिए कह दिया गिरधर गोपाल। तभी से मीराँ के सरल हृदय ने अपने-आपको सर्वस्व गिरधर गोपाल को समर्पित किया। एक अन्य जनश्रुति के आधार पर एक दिन कोई साधु मीराँ के पितामह राव दूदाजी के घर आये जिनके पास गिरधर गोपाल की बड़ी ही मोहक मूर्ति थी। बालिका मीराँ मूर्ति पर मुग्ध होकर उसे लेने के लिए हठ करने लग गई और साधु को मानना पड़ा, तभी से मीराँ उस मूर्ति को सदैव अपने पास रखने लग गई। इन घटनाओं से पता चलता है कि बाल्यावस्था में ही मीराँ ने गिरधर गोपाल को अपना इष्ट बना लिया था और उन्हें ही अपना सर्वस्व मानने लगी थी। इस तरह के कुछ पद भी प्राप्त होते है, जैसे–

'मेरे तो प्रभु गिरधर गोपाल दूसरो ना कोई' :

विवाह के बाद भी मीरा गिरधर गोपाल कि मुर्ति को अपने साथ ससुराल में ले गई थी। उन दिनों कन्या का विवाह योवनावस्था में कदम रखने से पहले ही कर दिया जाता था। मीराँ के मन में कृष्ण के प्रति प्रेम था। अपने हृदय में इसी प्रेम भाव को लेकर मीराँ अपने ससुराल चित्तौड़ गई थी और वे सदैव कृष्ण-उपासना में मग्न रहती थी। अतः अपने पति को पति के रूप में नहीं स्वीकारा। मीराँ का वैवाहिक जीवन बहुत संक्षिप्त रहा। भोजराज अधिक दिनों तक जीवित न रह सके। बीस वर्ष की आयु में ही मीराँ विधवा हो गई। इससे उनके जीवन में बहुत परिवर्तन आया। राजपूताने या राजस्थान में पति की मृत्यु पर सती होने की प्रथा मीराँ के समय में भी प्रचलित थी। किंतु वे सती नहीं हुईं, जिसके कारण उन्हें कई तरह के कष्ट सहने पड़े। मीराँ सभी लौकिक

संबंधों की परवाह न करते हुए अपने इष्ट देव के प्रति अनुरक्त रही और पूरा समय गिरधर गोपाल की आराधना में व्यतीत करने लग गई, तथा साधु-संतों के साथ सत्संग में लगी रही। ससुर राणा सांगा की मृत्यु के बाद मीराँ की सास, ननद तथा देवर राणा विक्रमादित्य ने उन्हें बहुत कष्ट दिए। राणा विक्रमादित्य ने जब विष का प्याला भेजा तो मीराँ ने उसे अमृत मानकर पी लिया लेकिन फिर भी उन्हें कुछ नहीं हुआ। मीराँ की जीवन शक्ति अत्यंत दृढ़ थी। उन्होंने किसी भी विषम परिस्थिति में अपना शीश नहीं झुकाया और समझौता नहीं किया। राजकुल की संकीर्ण मर्यादाओं को तोड़कर खुले समाज में आ गई और गिरधर गोपाल की भक्ति में लीन हो गई।

कवयित्री मोल्ला ने राम कथा के प्रमुख प्रसंगों को सरल रीति में प्रस्तुत किया है। उनसे पूर्व कई कवियों ने रामायण की रचना की, फिर भी वे रामायण की रचना क्यों करना चाहती हैं? इस प्रश्न के उत्तर में वे कहती हैं- 'आदि रघुरामु चरित्रमु सदा सादरमगु विन्नि गोत्तय् लक्षना सम्पादमै पुन्य स्त् वेदमै तोच्चुकोनु वेरिने चेप्पुन्।' अर्थात् यह रघुराम का चरित्र है। इसे सुनने में नित्य नवीन काव्य लक्षणों का सम्पादन होकर पुण्यस्त् वेद के समान प्राप्ति होती है। यदि ऐसा नहीं है तो मैं क्या पगली हूँ जो पुनः इस कथा को कहूं।

फिर कवयित्री मोल्ला प्रश्न करती है कि भुक्ति और मुक्ति का मूल तो रामचन्द्र है, उनकी स्तुति करने में दोष ही क्या है? इसके विषय में वे एक उदाहरण देकर समझाती हैं : 'एक वेश्या के द्वारा अपने एक तोते का नाम राम रखकर बार-बार राम राम कहकर पुकारने से उसका उद्धार हुआ। अतः उस राम की स्तुति करने से परम आनंद की प्राप्ति क्यों नहीं होगी?' मोल्ला की महत्ता तेलुगु साहित्य में दो प्रकारों से दिखायी देती है। एक कवयित्री के रूप में और दूसरी राम की परम-भक्तिन के रूप में। मोल्ला अत्यंत प्रतिभा सम्पन्न एवं विनयशील व्यक्तित्व वाली कवयित्री थी। वे कभी यह नहीं कहती हैं कि मैं प्रतिभा सम्पन्न हूँ, अतः मैं राम-कथा कथन करूंगी, वे यह कहती हैं कि 'देशीय शब्द तेलुगु, संस्कृत संधियों का ज्ञान, काव्य रीतियाँ, समास, अर्थ, भावार्थ, काव्य परिपाक, रस, भाव, धातु, क्रियाएं, अलंकार, विभक्तियां, छन्द, लक्षण आदि जानती ही नहीं हूँ।' फिर भी कवयित्री सुन्दर काव्य रचने की प्रतिज्ञा करती है और सात दिन के अंदर 900 पद्यों में राम कथा पूर्ण कर देती है।

काव्य के आरंभ में ही मोल्ला ने तेलुगु कविता के लक्षणों का सुंदर दिग्दर्शन कराया है। अपनी विद्या एवं पांडित्य प्रदर्शन के लिए संस्कृत के दीर्घ समासों से युक्त काव्य रचना करना मोल्ला को अभीष्ट नहीं था। ध्वनि पूर्ण मधु-मधुर ठेठ तेलुगु शब्दों में काव्य रचने का निश्चय कर लेती है। कवयित्री कहती है : 'तेने, नोरु तिय्या नगु रीति तोड़ानारदुनेल्ला बोचुकोंडा गूडा शब्दमुलनु गर्चना काव्यमु मूगा चविटिवारु मुच्चाटगुनु।' जैसे मधु के लगते ही सारा मुँह मीठा हो जाता है, वैसे ही सुनते ही शब्दों का अर्थ समाज में आना चाहिए। गूढ़ और कठिन शब्दों से युक्त काव्य तो बहरों और गूंगों का तमाशा होगा। मोल्ला कुमारिन (शूद्र जाति की) हैं। अतः वे जानती हैं कि रामायण संस्कृत में होने से साधारण जनता की पहुँच के बाहर हो जाएगी अतः वे देशी ग्रामीण भाषा में श्रीराम की भक्ति और शक्ति के बल पर काव्य रचना करती है।

राम कथा के आरंभ में मोल्ला स्वयं से पूर्व कवि, वाल्मीकि, वेदव्यास, भारवि, शिवभद्र, कालिदास, नाचनसोमन्न, नन्नय, श्रीनाथ, रंगनाथ और तिक्कन्ना जैसों को याद करते हुए उन्हें नमस्कार कर लिखा कि गोपवरम् के श्रीकंठ मल्लेश्वर के प्रसाद से कविता करना सीख गयी। ये सारी बातें उनकी प्रतिभा, प्रतिज्ञा तथा अतुलित विनय भावना को ही प्रकट करती हैं।

वे कहती हैं कि : 'सुलालित प्रताप गुण सागर राम कृपालु की स्तुति करने वाली जिह्वा को छोटे-मोटे राजाओं की स्तुति रुचिकर क्यों होगी। रामचंद्र

के कहने पर ही मैं राम के पुण्य चरित्र का गान करती हूं और अंत में उन्हीं के चरण कमलों में समर्पित करती हूं, इससे मोल्ला के स्वभाव और व्यक्तित्व का पता चल जाता है।'

मीराँ के आराध्य देव गिरधर गोपाल होने पर भी उनके राम नाम संबंधी पद भी प्राप्त होते हैं। दरअसल मीरा राम और कृष्ण को अलग-अलग नहीं अपितु एक ही मानती हैं।

'अब तो मेरा राम नाम दूसरा न कोई।।
माता छोड़ी पिता छोड़े-छोड़े सगा भाई।
साधु संग बैठ बैठ लोक लाज खोई।।
संत देख दौड़ आई, जगत देख रोई।
प्रेम आंसु डार डार, अमर बेल बोई।।
मारग में तारग मिले, संत राम दोई।
संत सदा शीश राखूं, राम हृदय होई।।
अंत में से तंत काढयो, पीछे रही सोई।
राणे भेज्या विष का प्याला, पीवत मस्त होई।।
अब तो बात फैल गई, जानै सब कोई।
दासी मीरां लाल गिरधर, होनी हो सो होई।।

मोल्ला की तरह मीराँ की भाषा भी आम जनता की भाषा है जिसे साधारण से साधारण व्यक्ति भी बोल और समझ सकता है। उनकी भाषा के शब्द, उपमाएं, मुहावरे, लोकोक्तियां और भाव जन-साधारण के ही थे और उनमें कवित्व शक्ति का प्रदर्शन और छन्द शास्त्र के विधान की धर-पकड़ नहीं थी, न ही उनमें व्याकरण के दाँव-पेंच ही थे। इसी कारण मीराँ के पद जनता में इतने प्रचलित हो सके। जनता उन्हें आसानी से समझ सकी, भाव-विभोर हो सकी। इन दोनों कवयित्रियों में असमानता नाम मात्र की है। परंपरा की दृष्टि से मीराँ कृष्ण भक्ति परंपरा में है तो मोल्ला राम भक्ति परंपरा के अंतर्गत आती है। मीराँ का संबंध राजकुल से है तो मोल्ला निम्न जाति की कुमारिन और अनाथ गरीब थी। मीराँ अपने को गोपिका मानती थी और उनकी माधुर्य भाव की भक्ति थी। मोल्ला कि दास्य भाव की भक्ति है। मीराँ की भाषा हिंदी है तो मोल्ला की तेलुगु।

दोनों का संघर्ष स्त्रियों के लिए आदर्श है। उस समय समाज में स्त्रियों पर पुरुषों के द्वारा कई तरह के अत्याचार किए जा रहे थे। जैसे सति-प्रथा के नाम से पति की मृत्यु के बाद पत्नी को बलपूर्वक पति के साथ जिन्दा जलाना, वेद, पुरान, रामायण जैसे ग्रन्थों के ज्ञान से दूर रखने के लिए उन्हें शिक्षा से वंचित किया गया। इस तरह कुरीतियों से संघर्ष करने वाली स्त्रियों में हिंदी प्रदेश में मीराँ तथा दक्षिण में मोल्ला है।

■

-एसो. प्रो. (हिन्दी विभाग),
हैदराबाद युनिवर्सिटी,
तेलंगाना, हैदराबाद-500046
मो. 9440425686
ईमेल : m.anjhcu@gmail.com

मैं तो प्रतिदिन यही अनुभव करता हूं कि
मेरे भीतरी और बाहरी जीवन के निर्माण में कितने
अगणित व्यक्तियों के श्रम और कृपा का हाथ रहा है और इस
अनुभूति से उद्दीप्त मेरा अंतःकरण कितना छटपटाता है
कि मैं कम से कम इतना तो इस दुनिया को दे सकूं
जितना मैंने उससे अभी तक लिया है।

- आइंस्टाइन

‘प्रियेचारुशीले’ निबंधकार : नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

अभिजीत सिंह

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ने एक स्थान पर लिखा है - ‘रंग अकेला हो तो केवल रंग होता है, लेकिन जब दूसरे रंगों से मिलता है तो इंद्रधनुष हो जाता है । रेखाओं से मिलता है तो राजा रवि वर्मा का चित्र हो जाता है और जब राग से मिलता है तो संगीत हो जाता है ।’ ठीक वैसे ही ’शब्द’ अकेला हो तो वह ’ब्रह्म’ है, लेकिन जब वह भावों, भंगिमाओं और शैलियों से एकमेक हो तो उस ब्रह्म को नाना रूपों और विधियों से अभिव्यक्त करने का साधन बन जाता है ।

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय वही शब्द साधक और भाव शिल्पी हैं जिन्हें साहित्य के संदर्भ में एवं जयदेव के शब्दों में ’प्रियेचारुशीले’ कहा जा सकता है । नर्मदा प्रसाद जी एक सिद्धहस्त निबंधकार हैं, लेकिन श्रेणीबद्ध करने की जल्दबाजी में उन्हें एकबारगी किसी भी श्रेणी में परिभाषित करना न सिर्फ उनके साथ अन्याय होगा बल्कि स्वयं निबंध विधा के साथ भी अन्याय होगा। निबंध लेखन के क्षेत्र में नर्मदा प्रसाद जी के विषय चयन का अहाता इतना विशाल है कि वह एक ही साथ ललित निबंधकार, संस्कृति चिंतक, कला चिंतक एवं लोक चिंतक भी हैं और कहना न होगा कि वे प्रत्येक क्षेत्र में समान वैचारिक हस्तक्षेप भी रखते हैं।

30 जनवरी 1952 को मध्यप्रदेश के हरदा में जन्मे नर्मदा प्रसाद जी ने अपने जीवन के तीन दशक से ज्यादा का समय भारतीय संस्कृति परंपरा एवं खासकर भारतीय चित्र परंपरा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण शोध में व्यतीत किया है। उनकी महत्वपूर्ण पुस्तकों में पार रूप के, चिंगारी की विरासत, फिर फूले पलाश तुम, प्रभास की सीपियां, परदेस के पेड़, भारतीय चित्रांकन परंपरा एवं भारतीय कला दृष्टि आदि का नाम लिया जा सकता है।

नर्मदा प्रसाद जी एक उत्कृष्ट ललित निबंधकार के साथ ही एक कुशल कला चिंतक भी हैं। कुशलता असल में वह गुण होता है जो कठिन से कठिन कला रूप का सामान्यीकृत और संप्रेषणीय स्वरूप में प्रस्तुतीकरण करता हो। नर्मदा जी जब यह कहते हैं कि- ‘भारतीय कला का नैसर्गिक गुण स्वाभाविकता है।’ - तो उनके कला चिंतन का कौशल समझ आता है कि जिस भारतीय कला (चित्र, नृत्य, वाद्य, गायन, मूर्ति, साहित्य आदि) का अहाता इतना व्यापक है कि वह तमाम काल खंडों अथवा अकादमिक परियोजनाओं की सीमा से परे है– उसकी नैसर्गिकता लेखक देखता है तो किस शब्द में? -स्वाभाविकता। जाहिर है यह स्वाभाविकता ’सत्यम् शिवम् सुंदरम्’ का ही साधारणीकृत रूप है और कहना ना होगा कि भोग और भौतिकता के छलावे से इतर भारतीय संस्कृति की जड़ इसी

सादगी में होनी भी चाहिए कि जहां जो जितना स्वाभाविक है वह उतना ही महान और ग्राह्य है।

साहित्य में ऐसे बहुत कम लोग हैं जिन्होंने चित्र कला और साहित्य का समेकित अध्ययन किया है। नामवर जी ने भक्ति काल के विषय में एक स्थान पर लिखा है कि 'भक्ति कालीन कवियों ने सिर्फ साहित्य नहीं रचा था। उन्होंने संगीत, गीत, वादन आदि कलाओं का भी विकास किया था। कुल मिलाकर एक 'वे ऑफ लाइफ' का विकास। यानी वे जब कहते हैं कि 'कबहुंक हौं यहि रहनि रहौंगो।' तो वह 'रहनि' जो है वह यही 'वे ऑफ लाइफ' है।' यानी नामवर जी ने साहित्य में इन अनुशासनों के अध्ययन अध्यापन की कमी को भी महसूस किया होगा इसमें दो राय नहीं। पंडित विद्यानिवास मिश्र ने कला और संस्कृति के क्षेत्र में जो अविस्मरणीय काम किया, नर्मदा जी उसी थाती को आगे बढ़ाते हुए तमाम भारतीय लघु चित्रों पर, भारतीय संस्कृति पर जो काम निरंतर कर रहे हैं, वह निस्संदेह साहित्य और अन्य कला अनुशासनों के बीच एक दृढ़ सेतुबंध का कारक होगा। इसी दृष्टि से उनकी पुस्तक 'पार रूप के' एक अद्‌भुत पुस्तक है जिसमें लोकगीतों पर, प्राचीन कथाओं के कला प्रतिमानों पर, विविध भारतीय चित्रकला रूपों (प्राचीन मध्यकालीन एवं आधुनिक चित्र शैलियों) पर, काव्य कला के रूपगत सौंदर्य आदि पर विविध लेख संकलित हैं जिन्हें एक लय की तरह पढ़ने को कोई भी सहृदय बाध्य हो जाता है।

नर्मदा जी के निबंधों की खासियत है कि वे अपने निबंधों में शिखर की बात नहीं करते बल्कि मूल की बात करते हैं, क्योंकि उनके लिए यह बिल्कुल स्पष्ट है कि मूल ही शिखर का पोषक तत्व है। अब चाहे वह किसी वृक्ष का हो या भाव का या संस्कृति का या फिर परंपरा का। 'नदी तुम बोलती क्यों हो?' निबंध में वह नदी की गतिशीलता को उसकी लोक सेवा के भाव से जोड़ते हैं तो दूसरी तरफ उसके स्थिर न रहने की प्रवृत्ति को उसके 'स्व' के उत्सर्ग के रूप में देखते हैं - 'क्यों बहती रहती है अनवरत कठोर पाषाणों के बीच, तपती धूप में? कहीं बर्फ में जमना पड़ता है तो कहीं निरंतर फिसलना, क्यों नहीं देती विराम इस कंटक भरी, पीड़ा भरी यात्रा को? सिर्फ तुझे अपना प्रवाह ही तो रोक लेना है, फिर तो तेरे सौंदर्य की आरती उतारने जाने कितने देव पुरुष खड़े हैं। लेकिन वह नहीं मानती।' ठीक ऐसे ही 'नीलकंठ तुम नीले रहियो' निबंध में भी हमारे समाज की उस पाखंडी प्रवृत्ति पर व्यंग किया गया है जहां हम हमेशा अपने लिए गरल पान करने वाले नीलकंठ (पक्षी या देव) की टोह में रहते हैं - 'हम तो चाहते हैं कि नीलकंठ हमारे लिए, हमारा उगला हुआ विष पीकर नीला बना रहे और राम तक हमारे पाखंड, छद्म और स्वार्थ की बातें पहुंचाने के बजाय यह झूठ पहुंचाए कि हम बड़े दुखी हैं, निराश हैं, तंग हैं, अंधेरे में हैं, विवश हैं, वक्त के मारे हैं, बेचारे हैं, बड़े अनासक्त हैं फिर भी तुम्हारे भक्त हैं इसलिए हे राम हमारा उद्धार करो। हमारी भीरुता की यह पराकाष्ठा है।'

भावपरक निबंधों की दृष्टि से देखें तो नर्मदा जी का निबंध संग्रह 'चिंगारी की विरासत' एक महत्वपूर्ण एवं भावोत्तेजक संग्रह है। 'भारतीय कला दृष्टि : परिक्रमा नहीं यात्रा' निबंध में लेखक लिखते हैं कि- 'अपनी कलाकृति के बारे में जो दृष्टि कलाकार की होती है, वह कला समीक्षक कि नहीं होती। सृजन बिल्कुल अलग है और सृजन को परखने की कोशिश बिल्कुल अलग।' हम समझ सकते हैं कि- 'आलोचना को रचना की दासी' इसी भाव भेद के कारण कहा गया होगा, ना की किसी विधा को उत्कृष्ट या निम्न बताने के ध्येय से।

'चिंगारी की विरासत' निबंध संग्रह के विषयों का फैलाव इतना व्यापक है कि उसे किसी एक क्षेत्र में समेट पाना असंभव है। तुलसी, सूर से शुरू होकर चित्रकूट के रास्ते यह संग्रह ओरछा की प्रसिद्ध गायिका और नर्तकी राय प्रवीण के बहाने इतिहास के अनछुए पन्नों को पलटते हुए भारतीय मानस और लोक

संस्कृति में राम की महत्ता पर न्योछावर होते हुए हमारी परंपराओं के सूक्ष्म से सूक्ष्म तंतुओं को स्पर्श करता हुआ कई स्थानों पर पाठकों को ट्रांस की स्थिति में ले जा सकता है, काल भ्रमण जैसी स्थिति कहें तो अतिशयोक्ति न होगी ।

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय की पुस्तक है 'भारतीय चित्रांकन परंपरा'। यह पुस्तक असल में एक यात्रा है- जयदेव कृत 'गीत गोविंद' के एक अति प्राचीन संस्करण के अध्ययन और शोध की। इस संस्करण की खासियत थी इसका सचित्र होना। गीत गोविंद की व्याख्या तो पहले भी कई विद्वानों ने की थी। स्वयं पंडित विद्यानिवास मिश्र की पुस्तक 'राधा माधव रंग रंगी' पढ़ें तो एक सरस व ज्ञानपरक व्याख्या मिलती है इस पुस्तक की। मिश्रजी ने इस पुस्तक की व्याख्या करते समय इसके प्रचलित मांसल प्रतिमानों और विवरणों की अपेक्षा इसके काव्य सौंदर्य को केंद्र में रखा है। केंद्र में रखा है उस सहज भाव को जहां प्रेम इतना सरल हो जाता है कि अलौकिक धरातल पर उसकी पहचान ही संभव नहीं। बहरहाल, तो नर्मदा जी की दृष्टि पड़ी गीत गोविंद पर और खासकर उस प्रति में उपलब्ध चित्रों पर। उस प्रति में तमाम ऐसे लघु चित्र संकलित थे, जिन्हें उसी पुस्तक के विविध प्रसंगों के आधार पर बनाया गया था। नर्मदा जी की पुस्तक असल में गीत गोविंद की इसी प्रति की अंतर्अनुशासनिक व्याख्या है, जो अपने आप में एक जटिल और दुर्लभ कार्य है। इस पुस्तक में न सिर्फ गीत गोविंद की साहित्यिक-काव्यात्मक व्याख्या है, साथ ही इस काव्य ने कला के किन-किन अनुशासनों को कितने आयामों में प्रभावित व विकसित किया है, इन पक्षों पर भी विस्तार से चर्चा है। गीत गोविंद के काव्य को आधार मानकर जो राग रागनियां प्रभावित हुईं, गीत गोविंद के विविध प्रसंगों के आधार पर जो नृत्य भंगिमा रची गईं, वह इस पुस्तक की महत्ता प्रतिपादित करती हैं। नर्मदा जी की इस पुस्तक में तमाम लघु चित्र संकलित किए गए हैं जो गीत गोविंद के प्रसंगों के आधार पर निर्मित हैं। इन चित्रों के विवरणों को पढ़ना और साथ-साथ चित्रकला कि विविध परंपराओं जैसे- गढ़वाली, कांगड़ा, कान्हेरी, मेवाड़ी आदि के चित्रों की तकनीकी बारीकियों और उनके अंतरों पर जानकारियां लेना अपने आप में एक बेहद रोमांचक अनुभव हो जाता है और कहीं ना कहीं चेतना का एक कोना यह सोचने को मजबूर होने लगता है कि जब तक साहित्यिक कृतियों और उनके प्रतिमानों का अध्ययन अंतर्अनुशासनिक शैली में नहीं किया जाता तब तक हम अपने पूर्वजों द्वारा प्रदत्त साहित्य की थाती को विकसित नहीं कर पाएंगे, उसमें ऐसा कुछ सार्थक कुछ महत्वपूर्ण नहीं जोड़ पाएंगे जिसके आधार पर हम साहित्य के आगामी अध्येताओं को साहित्य के सार्थक सामाजिक सरोकार के प्रति आश्वस्त कर सकें।

इस दृष्टिकोण से देखें तो नर्मदा जी वर्तमान निबंध विधा के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं जिन पर चर्चा किए बिना निबंध की किसी भी श्रेणी की चर्चा अधूरी ही रहेगी क्योंकि उनकी लेखनी में साहित्य, संस्कृति, परंपरा, विविध कला रूप एवं इतिहास आदि अनुशासनों को एक दूसरे में प्रतिबिंबित करने की जो विशेषज्ञता है, वह आज के लेखन जगत में दुर्लभ है।

■

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग
कार्तिक उरांव हिंदी गवर्नमेंट कॉलेज
जलपाईगुड़ी, पश्चिम बंगाल
सम्पर्क : abhisingh1985123@gmail.com
9831778147

संकोच के सागर में विवेक की बड़ी नाव बनाकर उसमें अपने वचन रूपी राहगीर को जो बुद्धि समान केवट के बल से पार करना जानते हैं, वही विवेकवान हैं।
- तुलसीदास

प्राचीन वाङ्मय में समय की सापेक्षता

डॉ. श्याम मनोहर व्यास

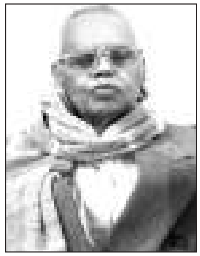

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टीन का समय की सापेक्षता का सिद्धांत 20वीं शताब्दी की महत्वपूर्ण खोज है। आइंस्टीन ने जटिल गणना द्वारा सिद्ध किया कि भिन्न वेगों पर समय की गति भी भिन्न होती है अर्थात् जब हम स्थिर हैं, तो समय जिस गति से व्यतीत होगा, उसकी तुलना में जब हम कार में चल रहे होंगे तब कार में समय व्यतीत होने की गति कम होगी। इसका अर्थ है जितने ही अधिक वेग से हम चलेंगे, समय की गति उतनी कम होती जाएगी। प्रकाश की गति में भी इसी प्रकार अंतर पड़ेगा।

साधारण अवस्था तथा गतिमियता में अंतर इतना कम होता है कि हमें भान नहीं हो पाता। प्रकाश की गति तीन लाख किलोमीटर प्रति सैकण्ड होती है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि आप किसी ऐसे अंतरिक्षयान में यात्रा करें जिसका वेग तीन लाख कि.मी. प्रति सैकण्ड हो तो उसमें समय व्यतीत होना समाप्त हो जाएगा। इसकी हम केवल कल्पना ही कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि समय सापेक्ष है। जिसे हम वर्ष कहते हैं वह पृथ्वी का एक बार सूर्य के चारों ओर घूमने का समय है, किन्तु समय के संबंध में यह धारणा शुक्रवासियों के लिए भिन्न होगी। शुक्र ग्रह 225 दिन में ही सूर्य की एक परिक्रमा कर लेता है। इसलिए शुक्र वासियों के लिए समय संबंधी धारणा भिन्न है। यह अलग विषय है कि शुक्र ग्रह पर जीवधारियों का अस्तित्व है या नहीं। अगर निरपेक्ष समय का अस्तित्व रहता है तो निश्चित रूप से यह पृथकता नहीं घट पाती। सुप्रसिद्ध आधुनिक वैज्ञानिक स्टीफन हार्किंग ने भी अपनी पुस्तक 'समय का इतिहास' (History of Time) में हम बात का उल्लेख किया है।

एक प्रौराणिक कथा है। सत्ययुग में राजा रैवत न्यायी, वीर एवं प्रजापालक नरेश हुए हैं। उन्होंने समुद्र के भीतर मय दानव की सहायता से कुशस्थली नाम की नगरी बसाई थी। उसी नगरी में रहकर राजा रैवत जम्बूद्वीप के कई प्रदेशों पर शासन करते थे। उनके सौ पुत्र और पुत्रियां थीं। एक बार कार्यवश रैवत अपनी पुत्री रैवती को लेकर ब्रह्मलोक में गए। उस समय वहां कोई उत्सव मनाया जा रहा था। गंधर्व, किन्नर और अन्य देवतागण चतुरानन की स्तुति करने में लगे थे। बातचीत का उचित अवसर न मिलने के कारण राजा रैवत वहां कुछ क्षण ठहर गए। उत्सव के अंत में ब्रह्माजी को नमस्कार कर राजा रैवत ने उनसे वार्तालाप किया। तदनन्तर राजकुमारी रैवती के लिए योग्य वर की बात चलाई। ब्रह्माजी ने कहा– 'राजन! वर के लिए जिन-जिन व्यक्तियों के नाम तुमने सुझाये हैं, वे अब काल के गाल में समा चुके हैं। जब तुम यहां आये थे

तो पृथ्वी पर सत्ययुग चल रहा था और जब वापस धरती पर लौटोगे तो द्वापर चल रहा होगा। अभी तो वहां त्रेतायुग चल रहा है और विष्णु के अवतार रामचन्द्रजी राज्य कर रहे हैं। जब तुम पृथ्वी पर लौटोगे तो विष्णु के अंशावतार बलराम अवतार ले चुके होंगे। तुम अपनी कन्या रैवती का विवाह उनसे करा देना। वे ही रैवती के लिए उपयुक्त वर होंगे।' बलराम लम्बे थे और रैवती की लम्बाई भी अधिक थी, अतः बलराम ही उसके लिए उपयुक्त वर थे। कथा वैसे सामान्य है, परन्तु समय के अंतर वाला इसका अंश बड़ा विचित्र एवं रहस्यमय है। राजा रैवत शायद किसी ऐसे अंतरिक्ष विमान में बैठकर ही ब्रह्मलोक में गए होंगे जिसकी गति काफी तीव्र होगी (प्रकाश के वेग से भी अधिक) परिणाम स्वरूप ब्रह्मलोक के समय की गति अत्यंत मंद पड़ गई और पृथ्वी का समय पूर्ववत् गति से व्यतीत होता रहा। ब्रह्मलोक की चलायमान गति से भी समय प्रभावित रहा होगा। ब्रह्मलोक का कुछ समय पृथ्वी के दो युगों के बराबर होगा। त्रेतायुग और द्वापर युग क्रमशः 12,96,000 और 8,64,000 वर्ष के होते हैं। वाल्मीकि रामायण में काकभुशुंडिजी की कथा आती है। रामायण के उत्तरकांड में एक प्रसंग आया है कि जब काकभुशुंडिजी राम के मुख में समा जाते हैं तो वहां सौ कल्प (एक कल्प 432 करोड़ वर्ष के बराबर) तक रहते हैं। धरती पर वापस लौटने पर ज्ञात होता है कि पृथ्वी पर केवल दो घड़ी ही बीती है। दो घड़ी में लगभग 45 मिनट होते हैं। इस कथा में भी 'समय की सापेक्षता' का ही सिद्धांत व्यक्त हुआ है, परन्तु यहां सापेक्षता का रूप उल्टा है।

पहले इन कक्षाओं को केवल कल्पना मात्र ही समझा जाता था पर आइंस्टीन की समय की सापेक्षता की खोज के बाद स्थिति भिन्न हो गई है। यद्यपि इन कथाओं में अतिशयोक्ति हो सकती है पर यहतो निष्पक्ष रूप से स्वीकार करना ही पड़ेगा कि समय की सापेक्षता की कल्पना सर्वप्रथम भारतीय ऋषि-मुनियों ने की।

श्रीमद् भगवद्गीता विश्व का एक अमूल्य ग्रंथ है। इसमें वर्णित एक श्लोक 'समय की सापेक्षता' के सिद्धांत को ही प्रतिपादित करता है। श्लोक इस प्रकार है-

सहस्त्रयुगपर्यंतमहर्यन्तम हर्यन्तम हर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युग सहस्त्रातां तेऽहोशरामविदो जनाः।।

(अर्थात् ब्रह्मा का जो एक दिन है, इसको एक हजार चतुर्युगी तक की अवधि वाला और रात्रि को भी एक हजार चतुर्यगी तक की अवधि वाली, जो पुरुष जानते हैं, वे योगीजन काल के तत्व को जानने वाले हैं।)

केवल अन्य ग्रहों में ही नहीं इस धरती पर भी दो व्यक्तियों की समय संबंधी धारणा भिन्न हो सकती है। मान लीजिए आसमान से एक गोला पृथ्वी के धरातल पर गिरता है। दो व्यक्ति गोले के गिरने के स्थान से 2 और 3 कि.मी. दूर खड़े हैं, हम यह नहीं कह सकते हैं कि दोनों ने एक समय में गोला गिरते देखा है। पहले व्यक्ति ने गोला गिरने के 2/3,00,000 सैकण्ड पश्चात् उसे देखा और दूसरे व्यक्ति ने 3/3,00,000 सैकण्ड पश्चात् उसे देखा क्योंकि प्रकाश की गति 3 लाख कि.मी. प्रति सेकंड है। प्रकाश की इस गति के कारण दोनों उसे भिन्न-भिन्न समय पर देखेंगे। जैन धर्म का स्याद्वाद आइंस्टीन के सापेक्षवाद के सदृश ही है। जैनदर्शन के अनुसार एक ही वस्तु को भिन्न-भिन्न रूपों से देखा जा सकता है। एक प्रसंग है–

'अनामिकाः कनिष्ठा मधिकृत्य दीर्घत्वम् मध्यमा अधिकृत्य ह्स्वत्वम्।' अर्थात् एक व्यक्ति ने अनामिका (चौथी अंगुली) और कनिष्ठा (पंचम अंगुली) एक साथ फैलाकर अपने साथी से पूछा- बताओ, बड़ी अंगुली कौन सी है? साथी ने कहा- 'अनामिका'। इस पर उस व्यक्ति ने कनिष्ठा नीचे दबाकर अनामिका के बराबर वाली मध्यमा अंगुली खोल दी और पूछा– 'क्या अनामिका बड़ी है?' साथी ने कहा– 'नहीं, अनामिका छोटी है।' इस छोटे से उदाहरण में 'सापेक्षवाद का सिद्धांत' गागर में सागर के समान छिपा पड़ा है।

सूर्य भी ब्रह्माण्ड के केंद्र बिन्दू (ब्लैक हॉल)

का अपने ग्रहमंडल के साथ परिभ्रमण करता है। सूर्य की इस परिक्रमा का यह समय कास्मिक वर्ष कहलाता है।

समय की बात :

समय की सापेक्षता का जीवन में बहुत महत्व है। समय-नियोजन जीवन की बहुत बड़ी कला है।

समय की सुव्यवस्था कार्यों के निष्पादन में सहायता करती है।

समय की नियमितता से मनुष्य की जीवन-शैली अव्यवस्थित हो जाती है।

जागरण और शयन की नियमितता व्यक्ति को अनेक कठिनाइयों से उबार लेती है।

अतीत व भविष्य दर्शन :

विख्यात अंतरिक्ष विज्ञानवेत्ता- फ्रैंड हॉयल का कथन है कि काल (समय) आगे से पीछे की ओर भी जा सकता है। नये अनुसंधान के अनुसार ब्रह्मांड में प्रतिपदार्थ (एंटी मैटर) के गोलाकार पिंडों की भी खोज हुई है। ये पॉजिट्रान काल में पीछे की ओर भी चलते हैं। वैज्ञानिक फेयनमां ने उनकी गति का चित्र फिल्म पर भी उतारा था। अंतरिक्ष विज्ञान वेताओं का कथन है कि अंतरिक्ष में हमारे सौरमंडल के अलावा कुछ सौरमंडल ऐसे भी हैं जो सम्पूर्ण रूप से प्रतिपदार्थ के बने हैं, वहां काल प्रवाह विपरीत दिशा में हो सकता है अर्थात् काल (समय) अतीत की ओर जा सकता है। उन्होंने टेंक योन नामक ब्रह्मांडीय कणों की कल्पना की है जो प्रकाश से भी तेज गति से चलते हैं और जो अतीत व भविष्य दोनों की ओर जा सकते हैं। यदि ऐसा है तो भविष्य व अतीत को देखना संभव है।

जो घटना पृथ्वी पर कभी घट चुकी है वह ब्रह्माण्ड के किसी ग्रह में वर्तमान है। जो आज घटती है वह किसी ग्रह के लिए भविष्यकाल की घटना हो सकती है। महाभारत काल में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो गीता का उपदेश दिया वह हमारे लिए अतीत है और किसी ग्रह के लिए वर्तमान काल। यदि उस ग्रह के निवासियों ने ऐसा उपकरण बना रखा होगा तो वे श्रीकृष्ण की वाणी को वर्तमान में सुन रहे होंगे। 'समय की सापेक्षता' का सिद्धांत विज्ञान के लिए अनुसंधान के नये आयाम खोलता हैं।

■

पूर्व शिक्षा उपनिदेशक एवं प्राचार्य (डाइट)
15 पंचवटी,
पो. उदयपुर (राज.) 313004
मो. 7506375336

क्या खोया क्या पाया

सोच, तनिक ठहर कर सोचो, क्या खोया क्या पाया मैंने?
दुर्लभ मानव-तन पा करके क्या-क्या रतन कमाया मैंने??
जीवन कुछ साँसों का डेरा, मौत लगाती प्रतिपल फेरा,
चाहे कोई भी हो, लेकिन यहां न उसका सदा बसेरा,
सोचो तनिक, अभी तक कितना जीवन व्यर्थ गँवाया मैंने?
सोच, तनिक ठहर कर सोचो, क्या खोया क्या पाया मैंने??
चाहे नर हो या हो नारी, मची सभी में मारामारी,
सबके मन में एक लालसा, मिल जाये सुख-संपत्ति सारी,
सोच, जीवन से आगे का क्या कुछ जतन बनाया मैंने?
सोचो, तनिक ठहर कर सोचो, क्या खोया क्या पाया मैंने??

– आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी मधुरेश

संदर्भ : सिनौली उत्खनन के साथ दिलचस्प मोड़ पर इतिहास

भारतीय आर्यों का रथ पर सवार इतिहास

प्रमोद भार्गव

उत्तर-प्रदेश के बागपत जिले के सिनौली गांव में भारतीय पुरातत्व सर्वे विभाग (एएसआई) ने उत्खनन किया है और इस उत्खनन में रामायण और महाभारत में वर्णित रथों जैसे तीन रथ निकले हैं। इस उत्खनन से प्राप्त नए तथ्य अंग्रेजों और भारतीय वामपंथियों द्वारा लिखी उस अवधारणा को सर्वथा नकार रहे हैं, जिसमें बार-बार दावा किया जाता रहा है कि आर्य घोड़ों से जुते रथों पर सवार होकर पश्चिम से भारत आए थे तथा इन आर्यों ने भारत पर आक्रमण कर यहां की पुरातन सभ्यता और संस्कृति को बुरी तरह रौंदा और भरतखंड के मालिक बन बैठे। किंतु अब सिनौली में मिट्टी के नीचे दबे जो प्रमाण सामने आए है, उनसे निश्चित हुआ है कि आर्यों के आक्रमण की कथित अवधारणा से भी करीब तीन हजार ईसा पूर्व हमारे पूर्वज रथ बना चुके थे। उस समय के राज-परिवार के लोग इनका आवागमन के लिए उपयोग करते थे। इस उत्खनन से हमारी वे प्राचीन मान्यताएं पुष्ट हो रही हैं, जो ऋग्वेद, उपनिषद, रामायण और महाभारत में दर्ज होने के बावजूद नकारी जाती रही हैं। गोया, अब अंग्रेजों के लिखे इतिहास को बदलने का समय आ गया है।

भारत के निर्माण और इसके पुरातात्विक महत्व को लेकर अब तक तय की गई धारणाओं को सिनौली की मिट्टी झुठला रही है। इस उत्खनन से पहली बार सिंधु घाटी की सभ्यता और ताम्रयुगीन-संस्कृति का सामंजस्य सामने आया है। एक ही स्थल पर दोनों ही सभ्यताओं के निशान मिलने से ऋग्वेद में उल्लिखित तथ्यों पर प्रमाण की मुहर लग गई है। यहां एक साथ लकड़ी के तीन ऐसे रथ मिले हैं, जिन पर तांबे और कांसे की परतें चढ़ी हैं। तीन खाटनुमा ऐसे ताबूत मिले हैं, जिनके उपर तांबे के पत्तर से पीपल के पत्तों की आकृतियां बनी हैं। एएसआई का जो दल डॉ संजय मंजुल के नेतृत्व में खुदाई में लगा है, उनका दावा है कि इन साक्ष्यों से महाभारत के काल निर्धारण और हड़प्पा-युग में घोड़ों के अस्तित्व को स्वीकारने की उम्मीद बढ़ गई है। इस उत्खनन से पहले तक मेसोपोटामिया, जॉर्जिया और ग्रीक सभ्यता में रथ के प्रमाण मिले हैं, लेकिन अब हम कह सकते हैं कि इन सभ्ताओं की तरह भारत के लोग भी रथों का निर्माण व प्रयोग करते थे। दरअसल अंग्रेजों ने अभी तक यह धारणा गढ़ी हुई है कि आर्यों ने 1500-2000 वर्ष पूर्व भारत पर हमला किया। वे रथों से आए और यहां की सभ्यता को नेस्तनाबूद करते हुए नई सभ्यता की नींव रखी। इनका दावा था कि इस समय तक भारत में बैलगाड़ी तो

थी, किंतु घोड़ा-गाड़ी नहीं थी। अलबत्ता अब इस खुदाई में मिले प्रमाणों ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत में ईसा पूर्व 5000 साल पहले से ही रथ उपयोग में लाए जाते रहे थे। इस खोज के पूर्व पुरातत्वविद् बी लाल पुरातत्वीय-अनुवांशिकी के आधार पर यह स्पष्ट कर चुके हैं कि हमारे डीएनए के गुण-सूत्रों में पिछले 12 हजार वर्षों से कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। दिसंबर 2007 में भी सिनौली में एक साथ 160 नरकंकाल मिले थे। इनकी कॉर्बन डेटिंग से यह खुलासा हुआ था कि ये चार से पांच हजार वर्ष प्राचीन हैं। ऐसे में रथ के साथ कंकाल और ताबूतों का मिलना, अंग्रेजों की आर्य संबंधी अवधारणा को पलटने के ठोस प्रमाण हैं। गोया, अब भारतीय इतिहास लेखन में जो भूलें बरती गई हैं, उन्हें सुधारा जाना आवश्यक हो गया है।

सिनौली ऐसा महत्वपूर्ण स्थल है, जहां शुरु से ही घर की बुनियाद, कुआं या अन्य कोई गड्ढा खोदने पर शिव, महिषासुर-मर्दिनी, शाकुंभरी और चामुंडा देवी की मिट्टी की मूर्तियां मिलती रही हैं। इसीलिए इस पूरे क्षेत्र को टेराकोटा क्षेत्र का दर्जा दिया हुआ है। इनके अलावा यहां सिंधु घाटी की सभ्यता से मेल खाते मिट्टी के बर्तन, कंकाल, आभूषण, मूठ वाली तलवार, तांबे की कीलें और कंघियां मिले हैं। यहां जो ताबूत मिले हैं, उन ताबूतों के उपर तांबे से बने पशुपतिनाथ के मुहर जैसे चिन्ह भी मिले हैं, जो भगवान शिव की मान्यता के प्रतीक हैं।

कुरु जनपद की राजधानी हस्तिनापुर गंगा के किनारे थी और महाभारत का युद्धस्थल 'कुरुक्षेत्र' यमुना नदी के किनारे था। कुरु क्षेत्र के निकट ही करनाल, पानीपत और सोनीपत हैं। इनके निकट ही बागपत जिले में स्थित सिनौली का वह क्षेत्र है, जहां उत्खनन में रथ मिले हैं। इससे यह उम्मीद है कि यहां मिले रथ व कंकाल महाभारतकालीन हो सकते हैं। बागपत का प्राचीन नाम ब्याघ्रप्रस्थ, सोनीपत का स्वर्णप्रस्थ, पानीपत का पर्णप्रस्थ और बरनावा का वार्णावृत है। पांच में से ये ही वे चार गांव हैं, जो पांडवों ने दुर्योधन से मांगे थे, लेकिन दुर्योधन ने सुई की नोक के बराबर भी भूमि पाण्डवों को देने से मना कर दिया था। अंततः इसकी परिणति महाभारत युद्ध के रूप में सामने आई।

ऋग्वेद के पहले मंडल के दूसरे अध्याय में स्पष्ट उल्लेख है कि 'अग्नि और जल के वेग से युक्त किया हुआ रथ बहुत दूर स्थित स्थानों पर भी तुरंत पहुंचता है।' यानी वैदिक काल में ऐसे भी रथ थे, जो घोड़ों के अलावा अग्नि और जल की ऊर्जा से संचालित होते थे। इसे ही 'अश्वशक्ति' कहा गया, जो इंजन के आविष्कार के बाद 'होर्स पावर' के नाम से जानी गई। इसी आध्याय के एक अन्य मंत्र में कहा गया है कि 'जैसे मनुष्य पहले कुएं को खोदकर उसके जल के उपयोग से संतुष्ट होता है, उसी तरह विद्वान लोग कलायंत्रों में अग्नि को जोड़कर उसकी सहायता से यंत्रों में जल को प्रवेश कराकर, उनको गतिमान कर अनेक कार्यों को सिद्ध करते हैं। वेदों में वर्णित इस वैज्ञानिकता को जब अंग्रेज मैकाले और जर्मन मैक्समूलर ने समझा तो वे हतप्रभ रह गए। वे जान गए कि भारत में यदि संस्कृत की महत्ता बनी रहती है और इसका प्रचार व विस्तार वैश्विक स्तर पर होता है तो ईसाई धर्म और बाइबिल को खतरा उत्पन्न हो सकता है? यूरोपियन ईसाई भी श्रेष्ठ धर्म के रूप में सनातन हिंदू धर्म और श्रेष्ठ भाषा के रूप में संस्कृत को अपना सकते हैं?

दरअसल इस विचार के आने से पहले संस्कृत और संस्कृत ग्रंथों से प्रभावित होकर विलियम जोंस नामक अंग्रेज न्यायाधीश ने 1784 में संस्कृत शिक्षा की नींव 'रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' की स्थापना कर रख दी थी। हम्बोल्ट ने 'गीता' के संदर्भ में लिखा था, 'गीता ऐसा गहनतम और महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसका समूचे विश्व में प्रदर्शन होना चहिए।' इन विद्वानों समेत फ्रांसीसी विद्वान बाप ने संस्कृत को विश्व की सबसे प्राचीन एवं आदिम-मानव की मूल भाषा माना था। किंतु मैकाले और मैक्समूलर ने अंग्रेजी भाषा और ईसाई धर्म की

प्रतिष्ठा बनाए रखने की दृष्टि से इन बुनियादी अवधारणाओं को कुटिलतापूर्वक पलट दिया। मैक्समूलर ने अपनी इस दुर्भावना को अपनी पत्नी को लिखे पत्र में उजागर करते हुए लिखा, 'वेद का अनुवाद और मेरा ऋग्वेद का भाष्य भविष्य में भारत वर्ष के भाग्य पर दूरगामी प्रभाव डालेगा। यह वेद सम्मत तीन हजार साल पहले से चली आ रहीं, जो स्थापित मान्यताएं हैं, उन्हें उखाड़ फेंकेगा।' मैक्समूलर अपनी इस कुटिल मंशा को भारत में स्थापित करने में सफल भी हुआ। उसकी और मैकाले की आवधारणाओं की स्थापना के चलते लाखों भारतीय ईसाई भी बनने लगे थे। वह तो इसी दौर में स्वामी दयानंद सरस्वती का आगमन हुआ, जिन्होंने न केवल वेदों की तर्कसम्मत व्याख्या की, बल्कि जो लोग धर्मांतरण कर ईसाई बन गए थे, उनकी हिंदू धर्म में वापसी भी कराई। गोया, मैक्समूलर जैसे पूर्वग्रही लोगों ने पश्चिमी देशों की साम्राज्यवादी लिप्सा और ईसाइयत के प्रसार को जायज ठहराने के लिए आर्यो को अफगानिस्तान और ईरान के मार्ग से हमलावर के रूप में भारत आने और यहां की मूल सभ्यता व संस्कृति को नष्ट करने का थोथा विचार गढ़ा। यही नहीं, इन्होंने उत्तर और दक्षिण भारत में विभाजन की परिकल्पना गढ़ते हुए, तर्क दिया कि भारत में छोटी जातियों के लोग, भारत के पराजित मूल निवासी हैं।

उक्त कल्पना के अनुसार आर्य लड़ाकू पट्ठे थे। ऊंचे, लंबे, सुगठित और गोरी चमड़ी के थे। ये घोड़ों के जुते रथों पर चढ़कर दनादन दौड़े चले आए। बैलगाड़ी पर सवार भारतीयों को आर्यों ने पछाड़ दिया। इनकी भाषा भारोपीय परिवार की थी। मध्य-एशिया, काकेशस या मध्य यूरोप इनका मूल निवास स्थान था। किसी जमाने वे अपने घर से अफगनिस्तान, ईरान, भारत और यूरोप के अनेक क्षेत्रों की ओर बढ़े। भारत की तरफ बढ़े आर्यों ने सिंधु घाटी की सभ्यता के लोगों का नरसंहार किया और फिर सिंधु व यमुना के बीच वाले क्षेत्र में बस गए। यहीं इन्होंने ईसापूर्व 1200 से ईसापूर्व 1000 के बीच वेदों की रचना की। नस्लवाद से पीड़ित जर्मनों ने आर्यों के बाहर से आने के तथ्य को जमाया और ब्रितानी हुकूमत को भारत में सही ठहराने के लिए अंग्रेजों ने इसे फैलाया।

इन झूठों का एक दावा यह भी था कि सिंधु नदी घाटी के मूल भारतीयों के पास घोड़े नहीं थे। जबकि आर्यो के पास उत्तम नस्ल के घोड़े थे, जिन पर वे चलते थे, जिनके द्वारा खींचे जाने वाले रथों पर वे बैठते थे। और सिंधु घाटी के लोग आर्य नहीं थे। इन लोगों के पास लोहा नहीं होने का तथ्य भी गढ़ा गया। हालांकि कालांतर में 1971-72 में जगतपति जोशी की देखरेख में हड़प्पा संस्कृति से जुड़े स्थल सूरकोटड़ा में जो उत्खनन हुआ था, उसमें पालतू घोड़े की हड्डियां भी मिली थीं। बाद में बुडापेस्ट हंगरी के विद्वान सैंडर बिकोन्यी ने इन हड्डियों का कॉर्बन परीक्षण करके 1974 में प्रमाणित किया कि खनन में मिली हड्डियां घोड़े की ही हैं। इस पुष्टि के बाद धौलावीरा खनन में आर.एस. विष्ट ने घोड़ों की हड्डियां पाए जाने की पुष्टि की। हल्लूर के नियोलिथिक स्थल से भी के. आर. अलूर ने घोड़े की हड्डियां बरामद कीं। इन तथ्यों से यह स्वाभाविक रूप से प्रमाणित होता है कि कथित विदेशी आर्यो के आने से पहले भारत में घोड़े उपलब्ध थे। जहां तक लोहे का प्रश्न है, तो वेदों में 'अयस' शब्द का उल्लेख है। वेदों में यह शब्द लोहा या इस्पात के संदर्भ में प्रयोग किया गया है। गोया ऋग्वेद के भारतीय आर्य न केवल लोहा जानते थे, बल्कि रथों, बैल-गाड़ियों और हथियारों में इसका प्रयोग भी करते थे। इस तथ्य से ऋग्वेद का रचनाकाल 7000 साल से भी पीछे जाता है।

आर्यों को विदेशी आक्रांता बताने वाले इतिहासकारों की एक धारणा यह भी है कि सभ्यता का पहले-पहल उदय मोसोपोटामिया की नदी घाटियों में हुआ और इसीलिए हड़प्पा के नगर-नियोजन और सिंधु घाटी की सभ्यता पर यूनानी ज्यामिती की छाप है, इनकी भाषा भारोपीय परिवार की है और इसी

कारण भारत से आयरलैंड तक भाषाई समानता है। इन तथाकथित तथ्यों व तर्कों का खंडन डॉ रामविलास शर्मा ने करते हुए कहा है कि न तो भारत समेत दुनिया में आर्य नाम की कोई नस्ल या जाति थी और न ही भारत में उसने किसी सभ्यता को नष्ट किया। यदि आर्य बाहर से आकर भारत में बसे थे और उनमें भाषाई समरूपता पता थी, तो फिर उसकी शब्दावली और संस्कृत में पाई जाने वाली सघोष ध्वनियों के अवशेष वहां क्यों नहीं मिलते, जहां से वे आए थे। वैसे भी भारत में 'आर्य' शब्द जातिसूचक न होकर श्रेष्ठ व्यक्ति के संबोधन से जुड़ा है। प्राचीन भारतीय स्त्री अपने पति को 'आर्य-पुत्र' कहकर पुकारती थी।

बहरहाल अब सिनौली के उत्खनन से तीन रथों पर सवार जिस इतिहास का प्रगटीकरण हुआ है, वह इस बात का स्पष्ट संकेत है कि नए साक्ष्यों के सामने आने के बाद इतिहास में संशोधन करते हुए, उसका पुनर्लेखन किया जाना चाहिए। वैसे भी जिन लोगों ने आर्यों के बाहर से आने की कपोल-कल्पना की थी, वे यूरोपीय अपने-अपने राष्ट्रीय और राजनीतिक मंतव्यों से परे नहीं थे? उन्होंने ऐसे कोई अंतिम तथ्य भी नहीं दिए, जिन्हें कसौटी पर कसते हुए बदला न सके? वे कोई ऐसे संत भी नहीं थे, जिनकी वाणी या लिखे को झुठलाया न जा सके? गोया आर्यों के आक्रमण की अवधारणा बदली ही जानी चाहिए, जिससे आम-भारतीय आत्महीनता के बोध से मुक्त हो।

■

लेखक/पत्रकार
शब्दार्थ, 49 श्रीराम कॉलोनी
शिवपुरी म.प्र.
मो. 09425488224, 09981061100

नेताजी की सूझबूझ

यह प्रसंग उस समय का है जब नेताजी सुभाषचंद्र बोस इंग्लैंड में आइसीएस का इंटरव्यू देने गये। इंटरव्यू बोर्ड के मेम्बर अजीबोगरीब और कठिन-से-कठिन प्रश्न पूछ कर भारतीयों को नीचा दिखाने का प्रयास करते और रिजेक्ट करने का मौका तलाशते रहते थे। जब नेताजी की बारी आयी तो वे इंटरव्यू के लिए अंग्रेज अधिकारियों के समक्ष बैठ गये। एक अधिकारी ने उन्हें देखकर व्यंग्य से मुस्कुराते हुए पूछा- बताओ, इस छत के पंखे में कुल कितनी पंखुड़ियां हैं। इस प्रश्न को सुनकर नेताजी की नजर पंखे पर चली गयी। पंखा काफी तेज गति से चल रहा था। उन्हें पंखे की ओर देखता पाकर अंग्रेज मुस्कुराते हुए एक-दूसरे की ओर देखने लगे। तभी दूसरा अंग्रेज बोला- यदि तुम पंखुड़ियों की सही संख्या नहीं बता पाये तो इस इंटरव्यू में फेल हो जाओगे। एक और सदस्य बोला- भारतीयों में बुद्धि होती ही कहां है? उनकी बातें सुनकर सुभाष निर्भीकता से बोले- अगर मैंने इसका सही जवाब दे दिया तो आप भी मुझसे दूसरा प्रश्न नहीं पूछ पायेंगे और साथ ही यह भी स्वीकार करेंगे कि भारतीय न सिर्फ बुद्धिमान होते हैं, बल्कि वे निर्भीकता और धैर्य से हर प्रश्न का हल खोज लेते हैं। अंग्रेजों ने उनकी बात मान ली। इसके बाद सुभाष तेजी से अपने स्थान से उठे। उन्होंने चलता पंखा बंद कर दिया और पंखा रुकते ही पंखुड़ियों की संख्या गिन ली। इसके बाद पंखुड़ियों की सही संख्या उन्होंने अधिकारियों को बता दी। सुभाष की विलक्षण बुद्धि, सामयिक सूझबूझ और साहस को देखकर इंटरव्यू बोर्ड के सदस्यों के सिर शर्म से झुक गये। वे फिर आगे कोई प्रश्न नहीं पूछ पाये।

जयपुर के गृहयुद्ध का कारण बना एक विवाह

आनन्द शर्मा

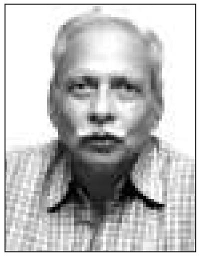

कभी-कभी एक छोटी सी बात भी पूरे जीवन भर के श्रम को झाड़ू-सा बुहार जाती है। विश्वविश्रुत गुलाबी नगर जयपुर के संस्थापक महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय (सन् 1700-1743) के साथ भी तो यही हुआ था। 25 मई, 1708 को मेवाड़ महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) की राजकुमारी चन्द्रकुँवर के साथ भाँवरें लेते समय, युवा जयसिंह ने हवन कुण्ड की पवित्र अग्नि को जयपुर राज्य के लिए दावानल बन जाने की कल्पना भी नहीं की थी। वे तो पूरे 146 वर्ष बाद मेवाड़ राजघराने के साथ पुन वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना होने से आल्हादित थे। 6 फरवरी, 1562 को आम्बेर नरेश भारमल द्वारा अपनी पुत्री हीराकँवर का विवाह बादशाह अकबर के साथ करने के कारण मेवाड़ ने कछवाहा घराने के साथ विवाह सम्बन्ध समाप्त कर लिए थे। ऐसे में राजपूताना के सिरमौर सीसोदिया राजवंश के साथ सम्बन्धों की पुनर्स्थापना 19 वर्षीय जयसिंह के लिए कल्पना से भी परे थी। उल्लास के क्षणों में जयसिंह ने इस विवाह से उत्पन्न पुत्र को ही अपना उत्तराधिकारी बनाने का वचन दे दिया था। तब उसे क्या पता था कि यह वचन एक दिन जयपुर राज्य में गृहयुद्ध का कारण बन जायेगा।

अपने पिता राजा बिशनसिंह की मृत्यु के बाद आम्बेर का राजा बने 11 वर्षीय जयसिंह ने बादशाह औरंगजेब से तो किसी तरह अपना राज्य बचा लिया था। किन्तु औरंगजेब की मृत्यु के बाद 12 अप्रेल, 1707 को हुए उत्तराधिकार युद्ध में शहजादा आजमशाह की ओर से भाग लेकर उसने शहजादा मुअज्जम को नाराज कर दिया था। युद्ध में विजयी होकर मुअज्जम, 'बहादुरशाह' उपाधि धारण कर आगरा के तख्त पर बैठा। 7 जनवरी, 1708 को वह आम्बेर आया और उसे खालसा करके उसका नाम 'मोमिनाबाद' रख कर सैयद हुसैन खां को प्रशासक नियुक्त कर दिया था। 9 फरवरी को उसने जोधपुर को भी खालसा करके उसका नाम 'मुहम्मदाबाद' रखते हुए मेहराब खां को प्रशासक नियुक्त कर दिया था। इस प्रकार बादशाह ने राजपूताने की तीन राजपूत शक्तियों में दो को सदैव के लिए समाप्त कर देने का प्रयास किया था। स्वतंत्र मेवाड़ की युद्ध तैयारियां देख उसने उसे छोड़ दिया था।

राजपूताना की राजपूत शक्ति नष्ट करने का षड्यंत्र समझ कर मेवाड़ महाराणा अमरसिंह ने इसे संगठित करके, मुगलों से संघर्ष करने का निर्णय कर लिया था। राज्यविहीन जयसिंह और जोधपुर महाराजा अजीतसिंह को इसमें सहायक बनना ही था। योजना के अनुरूप 20 अप्रेल को बादशाही छावनी से विद्रोह करके जयसिंह और अजीतसिंह मेवाड़ की ओर रवाना हो गए। 30 अप्रेल को महाराणा अमरसिंह 'गढ़वा' ग्राम में उनका स्वागत

कर उन्हें उदयपुर ले आये। ये ऐतिहासिक क्षण थे, जब महाराणा के दाहिनी ओर महाराजा अजीतसिंह और बायीं ओर महाराजा जयसिंह हाथियों पर चलते हुए उदयपुर में प्रवेश कर रहे थे।

राजपूत शक्ति को संगठित किये बगैर मुगल बादशाह से मुकाबला असंभव मान कर महाराणा ने तीनों प्रमुख राजवंशों (मेवाड़, आम्बेर, जोधपुर) को वैवाहिक सम्बन्धों में बाँधने का प्रस्ताव रखा। अपनी पुत्री चन्द्रकुँवर के जयसिंह के साथ विवाह प्रस्ताव के साथ रखी दो शर्तों में मेवाड़ राजकुमारी से उत्पन्न पुत्र को ही आम्बेर का उत्तराधिकारी बनाने तथा उससे उत्पन्न पुत्री का मुगलों के साथ विवाह न करने की व्यवस्था थी। 19 वर्षीय जयसिंह को इन शर्तों पर कोई आपत्ति हो भी नहीं सकती थी। एक तो 146 वर्ष बाद प्रतिष्ठित मेवाड़ राजवंश के साथ कछवाहों के वैवाहिक सम्बन्ध फिर से बन रहे थे। फिर जयसिंह का प्रथम विवाह होने के कारण मेवाड़ राजकुमारी से ही प्रथम पुत्र होने की संभावना भी थी। इस सम्बन्ध के द्वारा महाराणा की सैन्य सहायता से वह अपना राज्य पुनः प्राप्त कर सकता था।

जयसिंह के अनुबन्ध पत्र पर हस्ताक्षर करते ही जोधपुर महाराजा अजीतसिंह ने भी 26 जुलाई को अपनी पुत्री सिरहकँवर की सगाई जयसिंह के साथ कर दी। राजकुमारी की अल्पायु के कारण यह विवाह बाद में दिसम्बर, 1719 में सम्पन्न हुआ था। इस प्रकार राजपूताना के सर्वाधिक शक्तिशाली तीनों राजवंश सम्बन्धी बन गए थे। इसके बाद तो राजपूतों की सम्मिलित सैन्य शक्ति ने 3 जुलाई को जोधपुर से मुगल सूबेदार मेहराब खां को मार भगाया। 13 अक्टूबर को सांभर युद्ध में सैयद हुसैन खां को मार कर आम्बेर भी मुक्त करवा लिया गया। लम्बे राजनीतिक घात-प्रतिघातों के बाद बहादुरशाह भी समझ गया कि राजपूतों की इस संगठित शक्ति को मित्र बनाने में ही लाभ है। अतः 11 जून, 1709 को दोनों पक्षों के मध्य ऐतिहासिक समझौता हुआ। जिसमें राजपूतों को बादशाह का सेवक के स्थान पर सहयोगी मानना, बेटी देने की परम्परा बन्द करना और भविष्य में राजपूतों का पैतृक राज्य खालसा न करने जैसे प्रावधान भी थे। विवश बादशाह ने सभी शर्तें स्वीकार कर ली थी। यह राजपूतों की ऐतिहासिक विजय थी।

25 मई, 1708 को चन्द्रकुँवर के साथ भाँवरें लेते समय जयसिंह क्या जानते थे कि यह अनुबन्ध एक दिन उनके परिवार में गृहयुद्ध का कारण बन जायेगा। लम्बे वैवाहिक जीवन के बाद भी मेवाड़ की राजकुमारी के एक पुत्री ही हुई। जिसका विवाह कालान्तर में जोधपुर महाराजा अभयसिंह के साथ कर दिया था। इस दौरान जयसिंह उत्कर्ष पथ पर अग्रसर होते चले गये। गद्दी पर आसीन होते समय आम्बेर का तीन हजार वर्ग मील का राज्य अब बीस हजार वर्ग मील तक फैल गया था। इसी के अनुरूप नई राजधानी के लिए भव्य जयपुर नगर का निर्माण हो गया था। जयसिंह के 26 विवाह और हो चुके थे। राघोगढ़ की राजकुमारी सुखकँवर खींची के प्रति विशेष प्रेम के कारण उससे उत्पन्न ईश्वरीसिंह को ही जयसिंह अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। इस समय जयसिंह का प्रताप मध्याह्न सूर्य की तरह दमक रहा था। राजपूताना के राजा ही नहीं, तत्कालीन कमजोर मुगल बादशाह मोहम्मदशाह भी हर मामले में उसकी ओर ही देखता था।

मेवाड़ में महाराणा अमरसिंह की मृत्यु के बाद संग्रामसिंह महाराणा बन गये थे। जयसिंह ने (द्वितीय) ईश्वरीसिंह को अपना युवराज घोषित कर दिया था। सब कुछ ठीक चल रहा था। लेकिन वे क्या जानते थे कि भाग्य की एक नई करवट का सामने आना तो अभी बाकी था। वार्धक्य में अपनी प्रथम रानी मेवाड़ की राजकुमारी चन्द्रकुँवर के गर्भवती होने का समाचार जयसिंह के लिए चिन्ता का कारण बन गया। अपने पति के ईश्वरीसिंह के प्रति अन्ध मोह से अवगत महारानी चन्द्रकुँवर अपनी गर्भ रक्षा के लिए उदयपुर चली गई, जहाँ 30 दिसम्बर, 1728 को माधव सिंह (प्रथम) का जन्म हुआ। इसके साथ ही सब कुछ उलट गया था। जयसिंह के स्व. महाराणा

अमरसिंह के साथ हुए अनुबन्ध के अनुसार कनिष्ठ राजकुमार होने पर भी, अब माधवसिंह ही जयपुर के वैभवशाली राज्य का उत्तराधिकारी बन गया था।

'वीर विनोद' के अनुसार जयसिंह ने ईश्वरीसिंह का राज्य निष्कंटक बनाने के लिए माधवसिंह को मरवाने के प्रयास भी किये थे। इसमें आश्चर्य की बात भी नहीं थी। क्योंकि ईश्वरीसिंह के लिए ही उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र शिवसिंह और उसके दोनों पुत्रों को मरवा दिया था। किन्तु चन्द्रकुँवर की सतर्कता के कारण माधवसिंह की हत्या के प्रयास सफल नहीं हुए। निरुपाय जयसिंह ने उदयपुर जाकर महाराणा संग्रामसिंह को समझाया कि वे रामपुरा की जागीर माधवसिंह को देकर इस विवाद को समाप्त करें। राव नगराज धायभाई ने भी महाराणा को समझाया कि माधवसिंह को यह पट्टा देने से मेवाड़ के क्षेत्र में कोई कमी नहीं आयेगी। दूसरी ओर बादशाह मुहम्मदशाह से मिल कर जयसिंह भी कोई संकट खड़ा नहीं करेंगे। जयसिंह के बाद जो होगा सो देखा जायेगा।

इस पर महाराणा ने रामपुरा का पट्टा अपने भानजे माधवसिंह के नाम कर दिया। इसकी और जयसिंह के इकरारनामे की नकलें 'वीर विनोद' के पृष्ठ 975 पर उद्धृत हैं। सावधान जयसिंह ने मेवाड़ के प्रमुख सामन्तों रावत बुद्धसिंह, रावत कुबेरसिंह, रावत जसोतसिंह, पदमसिंह, नाथजी, साह भीम आदि से भी भविष्य में माधवसिंह को जयपुर की गद्दी पर बैठाने के लिए बादशाह और मराठों से कोई सहायता नहीं मांगने का लिखित वचन भी ले लिया था। इससे कण्टक पूरी तरह कट गया था। संग्रामसिंह की मृत्यु के बाद महाराणा बने जगतसिंह ने तो अपनी पुत्री की सगाई तक ईश्वरीसिंह के साथ कर दी थी। अब जयसिंह अपने पुत्र ईश्वरीसिंह के निष्कंटक राज्य के प्रति पूर्ण आश्वस्त हो गये थे।

लेकिन मनचीता किसका हुआ है। 21 सितम्बर, 1743 को पचपन वर्ष की आयु में जयसिंह का निधन हो गया और 22 सितम्बर 1743 को ईश्वरीसिंह गद्दी पर बैठा। इसके साथ ही जयपुर का गृहयुद्ध आरम्भ हो गया। महाराणा जगतसिंह ने अनुबन्ध के अनुसार अपने भानजे माधवसिंह को जयपुर की गद्दी पर बैठाने के लिए मराठों और कोटा के राव दुर्जनसाल को सहायता के लिए बुलवाया और ससैन्य जयपुर की ओर प्रस्थान किया। ईश्वरीसिंह भी मुकाबला करने के लिए जयपुर से रवाना हो गया। बनास नदी के एक ओर जामोली में महाराणा और दूसरी ओर पंडेर में ईश्वरीसिंह की सेनायें जम गई थी। किन्तु जयपुर के दीवान राजा अयामल खत्री ने पाँच लाख रुपये वार्षिक आय वाला टोंक परगना माधवसिंह को दिलवा कर समझौता करवा दिया।

किन्तु मार्च सन् 1748 में मराठों और कोटा-बूंदी के हाड़ाओं की सहायता लेकर महाराणा फिर जयपुर की ओर बढ़े। ईश्वरीसिंह ने आगे आकर उनका मुकाबला किया। 'राजमहल' के इस भीषण युद्ध में हजारों राजपूत मारे गए। जयपुरी सेना के पैर उखड़ने ही वाले थे कि स्वयं माधवसिंह ने अपना झण्डा फहरा कर अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली। अपनी सेना में जयपुरी पंचरंगा ध्वज देख कर मराठों और हाड़ाओं को अपनी सेना में जयपुरी सेना घुस आने का भ्रम हो गया। इससे मची अफरातफरी से मेवाड़ और हाड़ौती की सेना भाग छूटी। ईश्वरीसिंह को अनायास ही विजश्री मिल गई। इस विजय की स्मृति में ईश्वरीसिंह ने जयपुर के त्रिपोलिया बाजार में सतमंजिली 'ईश्वरलाट' (सरगासूली) का निर्माण करवाया था। इस युद्ध का संचालन जयसिंह के विश्वस्त दीवान रहे राजा अयामल खत्री के पुत्र दीवान केशवदास खत्री ने किया था।

पाँच माह बाद अगस्त में माधवसिंह मराठी, मेवाड़ी और राठौड़ी सेना की सहायता से फिर जयपुर पर चढ़ आया। बगरू के पास 14 से 16 अगस्त तक हुई लड़ाई में ईश्वरीसिंह की हिम्मत टूट गई। तब दीवान केशवदास खत्री ने मराठा होल्कर को लालच देकर अपने पक्ष में करके दोनों पक्षों में समझौता करवाया जिससे टोंक के चार परगने माधवसिंह को देने पड़े थे।

इस समझौते को आधार बना कर हरगोविन्द नाटाणी ने केशवदास खत्री पर मराठों का पक्षधर होने का आरोप लगा कर ईश्वरीसिंह के कान भरने आरम्भ कर दिए। अन्ततः ईश्वरीसिंह ने अपने सामने केशवदास को विष पिला कर हत्या करवा दी। निरपराध केशवदास ने कहा कि आपने मुझ निरपराध की जान ली है। परमात्मा आपको इसका फल देगा। तभी से जयपुर में यह कहावत प्रसिद्ध हुई -

मंत्री मोटो मारियो, खत्री केशवदास।
अब तो छोड़ो ईसरा, राज करण री आस।।

केशवदास के बाद दीवान बने हरगोविन्द नाटाणी ने तीन लाख कछवाही सेना अपनी जेब होने का आश्वासन देकर ईश्वरीसिंह को निश्चिन्त कर दिया। चिन्तामुक्त महाराजा भी भोगविलास में मग्न हो गया। खानू महावत और शंभू बारी जैसे छोटे लोग उनके मुसाहिब बन गये थे। प्रजा पर जुल्म करने के साथ वे किसी का भी धन और औरतें लूट लेते थे। जयपुर में बदअमनी फैल गई थी। मराठों के साथ मिलीभगत के आरोप में केशवदास की हत्या से क्रुद्ध मल्हार राव होल्कर 11 अक्टूबर, 1750 को जयपुर पर चढ़ आया। रोकने के सारे प्रयास असफल हो जाने और होल्कर के जयपुर के पास आ जाने से चिन्तित ईश्वरीसिंह ने हरगोविन्द नाटाणी को अपनी जेब में रखी तीन लाख सेना निकालने के लिए कहा। नाटाणी का कठोर उत्तर था, 'आपके कुकर्मों के कारण मेरी जेब फट गई।'

अब समझने के लिए क्या बाकी रह गया था। मराठा सेना के सांगानेरी दरवाजे तक आ पहुँचने का समाचार पाकर केवल 7 वर्ष 2 माह 11 दिन राज करने के पश्चात 23 दिसम्बर, 1750 को महाराजा ईश्वरीसिंह विषपान के साथ, स्वयं को साँप से भी कटवा कर केशवदास जैसी ही परिणति को प्राप्त हुआ। मराठों के भय से उनका अन्तिम संस्कार भी महल के पिछवाड़े आधी रात को करना पड़ा था, जहां आज भी इसकी छत्री बनी हुई है। ईश्वरीसिंह के कोई पुत्र नहीं था, अतः 10 जनवरी 1751 को माधवसिंह (प्रथम) जयपुर का महाराजा बन गया और 17 वर्ष 2 माह 21 दिन राज किया। उत्तराधिकार के लिए हुआ गृहयुद्ध जयपुर को मराठों का क्रीतदास बना गया। मराठों और पिण्डारियों की लूट से जयपुर को मुक्ति कालान्तर में सन् 1818 में अंग्रेजों के साथ सन्धि करने के बाद ही मिल पाई थी।

■

645, किशोर कुंज, किशनपोल बाजार,
जयपुर-302001
मो. 9462312222

प्रेम सदा सुखसार

प्रेम स्वयं परमेश, प्रेम ही सदा सर्व-सुखसार।
प्रेम-बिना तो जीवन जग में लगता केवल भार।।
सभी रसों में पुण्य प्रेम ही रस है सदा विशेष,
जिसमें राग न रहे किसी से मन में रहे न द्वेष,
सबके लिए न कभी बन्द हो सहज प्रेम के द्वार।
प्रेम स्वयं परमेश, प्रेम ही सदा सर्व-सुखसार।।
प्रेम देव का पूजन ही है जग में मंगल-मूल,
पुण्य प्रेम से ही खिलते हैं मानवता के फूल,
जग-जीवन के मन-उपवन में प्रेम वसन्त-बहार।
प्रेम स्वयं परमेश, प्रेम ही सदा सर्व-सुखसार।।

– आचार्य भानुदत्त त्रिपाठी मधुरेश

चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व का समग्र विकास तथा संस्कार

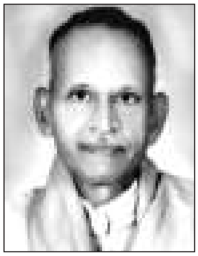

आचार्य डॉ. रामेश्वर प्रसाद गुप्त

ऋग्वेद का उद्घोष है कि 'मनुर्भव' -(ऋग्वेद-10.53.6) अर्थात् हे मनुष्यो सही मानव बनो। सद्‌विद्या-उपेत होना और तद्वत् आचरण अर्थात् सदाचरण ही सही मानव का निकष है। अन्यथा मनुष्य योनि में होते हुए भी 'व्यक्ति' पशुवत् ही मान्य होता है। यथा महाकवि भर्तृहरि ने उल्लेख किया है कि–

'साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छ विषाणहीनः।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः तद्‌भागधेयं परमं पशूनाम्।।'
'येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्य लोके भुविमारभूताः मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।'

- नीतिशतकम् - 12,13

ज्ञान, विवेक, शील और सत्कर्म सही मानव की कसौटी हैं। ये अच्छे संस्कारों से ही प्राप्य हैं। शुभ संस्कारों से व्यक्ति के श्रेष्ठ चरित्र का निर्माण एवं उसके समग्र व्यक्तित्व का विकास होता है। मूल्य-आधारित-शिक्षा में मात्र संस्कार ही कथ्य हैं, जिनसे मनुष्य में मानवता सन्निविष्ट होती है और वह सही मानव कहलाने योग्य बनता है। 'मनुष्य' जन्म से शूद्र या अवर कहा गया है। संस्कार से ही व्यक्ति द्विजता या पावित्र्य को प्राप्त करता है। पुनश्च वेदपाठ से विप्र अर्थात् विशेष मान्यता प्राप्त होता है तथा आत्मज्ञान से सही मनुष्य की कोटि में प्रगण्य होता है। यथा मनु ने उल्लेख किया है कि–

'जन्मना जायते शूद्रः, संस्कारात् द्विज उच्यते।
वेदपाठात् भवेत् विप्रो, ब्रह्मजानाति सः ब्राह्मणः।'

स्पष्ट है कि अच्छे चरित्र की निर्मिति तथा व्यक्ति के समग्र विकास में संस्कार रूपी मूल्यों की शिक्षा आवश्यक एवं अपरिहार्य है। भारतीय-साहित्य में संस्कारों और उनकी बहुमूल्य उपादेयता निरूपित है। आदि से लेकर अद्यपर्यंत जितने महापुरुष, सुकीर्तितसुकृती, देशभक्त और परोपकारी संत मनीषी हुए हैं उनकी सृष्टि संस्कारों का ही सुफल है।

श्रीकृष्ण द्वैपायन (वेद व्यासजी) ने सभी मनुष्यों के लिए परम उपयोगी सोलह संस्कारों का उल्लेख किया है। यथा-गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास तथा अन्त्येष्टि। उपर्युक्त संस्कार 'सही मनुष्य' बनने के लिए श्रेष्ठ साधन एवं सही सोपान हैं, जिनसे मानव के सही चरित्र का निर्माण होता है एवं उसके समग्र व्यक्तित्व का विकास

होता है। इन्हीं संस्कारों से उत्कृष्ट चरित्र प्राप्त हमारे देश के महामनीषियों ने विश्व भर के मानवों को सद्चरित्र की शिक्षा देकर अपनी महिमा को एवं विश्वगुरुत्व को प्रचारित किया। यथोल्लेख है कि-

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः।।'

-मनुस्मृति 2-20

भारतीय समाज और साहित्य में सदाचार को ही श्रेष्ठ धर्म मान्य किया गया है। यथा निर्दिष्ट है कि- ***'आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।***
तस्मादस्मिन्सदा युकोनित्यं स्यादात्मवान्द्विजः।'

-मनुस्म.1-108

अर्थात् वेदों और स्मृतियों के अनुसार सदाचार ही श्रेष्ठ धर्म है। आत्महिताभिलाषी व्यक्ति को सदाचार के पालन में प्रयत्नवान् होना चाहिए। श्रीरामचरितमानस में भी गोस्वामी तुलसीदासजी ने सदाचरण या सत्य को अद्वितीय धर्म मान्य किया है। यथा प्रदिष्ट है कि-

'धरम न दूसर सत्य समाना।
आगमनिगम पुरान बखाना।।'

-रा.च.मा. 2-94-5

सत्य निष्ठा या सदाचरण अथवा सच्चरित्र निर्माण का मूल आधार संस्कार ही हैं। गर्भाधान से लेकर परमात्मतत्व की प्राप्ति-पर्यंत जिन संस्कारों का उल्लेख है, वे मानव-मन की प्रसुप्त वासनाओं को निराकृत कर नव-नवोन्मेषशालिनी बुद्धि से परिचय कराते हैं तथा मन को शिव-संकल्प से युक्त बनाते हैं। ये सभी संस्कार सद्बुद्धि प्रदान करते हुए व्यक्ति के लिए सतत् सन्मार्ग प्रशस्त करते हैं। गर्भाधान संस्कार उपर्युक्त सभी संस्कारों में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। 'शुभ समय, शुभ विचार, शुभ मानसिकता तथा पावन प्रसन्नता' इसके लिए अपरिहार्य है। हर्षित-हृदय दम्पति ही इस संस्कार से लोकमंगलकारी संतति प्राप्ति के अधिकारी बनते हैं। लोक के श्रेष्ठ पुरुषोत्तम राम, कृष्ण, ध्रुव, प्रह्लाद, शंकराचार्य आदि की उत्पत्ति के मूल में उनकी मातृपितृ शक्ति का आह्लाद ही अनघ आधार था। '16 संस्कार' चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व विकास के आदृत श्रेष्ठ सोपान हैं। इनकी वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण उपादेयता है। श्रेष्ठ, सार्थक एवं सुधी सत्कर्मी संतति प्राप्ति हेतु बीज (पुरुष) और क्षेत्र (स्त्री) दोनों की शुद्धि अनिवार्य कही गई है। यथा-

'निषेकाद्बैजिकं चैनो गार्भिकञ्चापमृज्यते।
क्षेत्र संस्कार सिद्धिश्च गर्भाधानफलं स्मृतम्।।'

यहां यह भी उल्लेख है कि शास्त्रविधानानुसार गर्भाधानादि संस्कारों को सम्पन्न करने वाला ही गुरु अर्थात् पिता कहलाने योग्य होता है। यथोल्लिखित है कि-

निषेकादीनि कर्माणियः करोति यथाविधिः।
सम्भावयति चान्नेन स विप्रो गुरु रुच्यते।।

मनुस्मृति-2-142

इस प्रकार 'गर्भाधान संस्कार' स्त्री-पुरुष के संबंध की पवित्रता एवं संयम के महत्व का प्रतिपादन करता है, जो शिव संतति-उपलब्धि का स्पष्ट दिग्दर्शन है। गर्भाधान संस्कार के पश्चात् पुरुषत्व पूर्ण (प्रभावशाली) संतति की प्राप्ति हेतु पुंसवन संस्कार का विधान है। यह संस्कार गर्भ के द्वितीय या तृतीय मास में करणीय है। इस संस्कार की विधि, संयम व सम्पन्नता मनोभिलषित श्रेष्ठ सन्तति प्रदायिनी होती है।

तृतीय संस्कार सीमन्तोन्नयन संस्कार है, जो गर्भ के चतुर्थ या षष्ठ माह में करणीय है। सीमन्तोन्नयन संस्कार 'क्षेत्र' (स्त्री) की पुनः शुद्धि तथा गर्भस्थ शिशु की समुचित रक्षा एवं उसके कल्याण के लिये किया जाता है। इससे गर्भस्थ शिशु में चेतनता का सम्यक् जागरण होता है। वह अपनी माता के आह्लाद से सच्चिदानन्द का अनुभव करता है। गर्भस्थ शिशु मंगल वाणी का रूप धारण करता है। यथा- मंगल्यामिर्वाग्भिरुपासीरन्।। गोभिलगृह्यसूत्र-2-12 चतुर्थ संस्कार 'जातकर्म' है। इसमें स्वस्थ शिशु के जन्म की कामना होती है। यथोल्लेख है कि–

'दशमासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि।।'

- ऋग्वेद 5-75-9

इस संस्कार में शिशु के जन्मोपरान्त गृह-स्वच्छता, शिशु स्नान, उसका नाभि-छेदन, दुग्धपान आदि क्रियायें सम्पन्न होती हैं। इसमें शिशु की दीर्घ-आयु की कामना की जाती है। यथा-

'अश्माभव, परशुर्भव हिरण्यमश्रुतं भव।
आत्मा वै पुत्रनामासि सजीव शरदः शतम्।।'

इस संस्कार से शिशु की आत्मा और मन को अपूर्व पोषण प्राप्त होता है।

पंचम संस्कार नामकरण संस्कार है। नाम का विशेष महत्व इसलिए है कि वह नामार्थ का रूप बनकर जातक को अंतःवाह्य से प्रभावित करता है। नाम व्यक्ति के चरित्र को भी प्रभावित करता है। राम, विद्यासागर, विद्यालंकार आदि ऐसे नाम हैं, जो व्यक्ति पर तद्वत् उन्मेष-प्रक्षेप करने में सहायक प्रतीत होते हैं। शास्त्रों में नामकरण की बड़ी महत्ता निर्दिष्ट है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी यह उपादेय है। जातक का नामकरण संस्कार उसके जन्म से ग्यारहवें दिन करणीय कहा गया है।

षष्ठ संस्कार 'निष्क्रमण' है। जन्म से तीन या चार मास पश्चात शिशु को अनेक मंगलकामनाओं एवं शुभाशीषों के साथ घर की देहली से बाहर भ्रमण कराने का उपक्रम इस संस्कार के माध्यम से होता है। इस अवसर पर शिशु के लिए उत्कृष्ट मंगलकामना इस शुभमंत्र के द्वारा की जाती है। यथा-

'शिवे तेस्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ।
शं ते सूर्य आतपतु शं वातु ते हृदे।
शिवा अभिक्षरन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः।।'

अ. 8-2-14

अर्थात् (हे शिशु!) तेरे निष्क्रमण काल में द्यूलोक और पृथ्वीलोक कल्याणकारी, सुखद और शोभास्पद हों। सूर्य तेरे लिए कल्याणकारी प्रकाश करे। तेरे हृदय में स्वच्छ वायु का संचार हो। गंगा आदि दिव्य सरितायें तेरे लिए निर्मल और मधुर सुस्वादु जल का प्रवहण करें।

सप्तम संस्कार 'अन्नप्राशन' शिशु की छह माह की आयु के पश्चात् करणीय है। इसमें पुष्ट और निष्पाप अन्न शिशु के लिए प्रदान करने का विधान है। इसमें प्रारम्भ में पुष्टि कारक जौ और चावल खिलाने का विधान है। *(अथर्ववेद-8-2-18)*

'चूड़ाकरण' अष्टम संस्कार है। चूड़ाकरण संस्कार शिशु के बल, आयु तथा तेज की वृद्धि के लिए किया जाता है। (यजुर्वेद 3-331)। चूड़ाकरण अर्थात् शिखा या चोटी दी जाना। इसमें शिशु का मुंडन कर शिखा रखने का प्रावधान है। आयुर्वेद इस संस्कार से शिशु की पौष्टिकता को ज्ञापित करता है। यथोल्लेख है कि -

पौष्टिकं वृष्यमायुष्यं शुचिरूपं विराजनम्।
केशश्मश्रुनखादीनां कर्तनं सप्रसाधनम्।।

-चरक सूत्रस्थान 5, सूत्र 93

चूड़ाकरण या मुण्डन संस्कार शिशु की पहली या तृतीय वर्ष की आयु में करणीय है।

नवम संस्कार 'कर्णवेध' संस्कार है। यह शिशु या बालक की एकाग्रमनोवृत्ति के लिए परमोपयोगी है। यह जातक के जन्म से पांच या छह वर्ष की आयु में होता है।

'उपनयन' दशम संस्कार है। 'उपनयन संस्कार' बालक को द्विजस्वरूप दूसरा जन्म प्रदान करता है। यह ब्रह्मचर्य व्रत का आदेश संस्कार है। यह अमृतत्व का मार्ग प्रशस्त करता है। कहा भी है कि–

'ब्रह्मचर्येण तपसा देवाः मृत्युमुपाघ्नत।'

-अथर्ववेद 11-7-19

यह संस्कार आठ से बारह वर्ष की आयु तक मान्य है। इस संस्कार में बालक को गुरु के पास ले जाकर उसको यज्ञोपवीत धारण कराया जाता है एवं गायत्री मंत्र की विशेष रूप से दीक्षा प्रदान की जाती है। इस संस्कार के वैशिष्ट्य के विषय में उल्लेख है कि 'यज्ञोपवीत से बालक का द्वितीय जन्म होता है। इस द्वितीय जन्म में उसकी माता सावित्री अर्थात् गायत्री तथा पिता आचार्य मान्य है।' यथोक्त है कि-

तत्र यद् ब्रह्मजन्मास्य मौञ्जीबन्धनचिहिनतम्।
तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते।।

-मनुस्मृ. 2-170

उपनयनोपरांत 'वेदाध्ययन' संस्कार होता है। इसमें ब्रह्मचारी अध्ययन करता हुआ, शास्त्रोक्त विधि से गुरु शासन में रहता हुआ, जितेन्द्रिय एवं शास्त्रों का विज्ञाता होता है। यथोक्त है कि–

अध्येष्यमाणास्त्वाचान्तो यथाशास्त्रमुदङ्मुखः।
ब्रह्माञ्जलिकृतोऽध्याप्योलघुवासा जितेन्द्रियः।।

-मनुस्मृति 2-70

पच्चीस वर्ष की आयु पर्यंत शिक्षा प्राप्त ब्रह्मचारी समावर्तन संस्कार में दीक्षित होता है। इसमें दीक्षांत उपदेश प्राप्त कर ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम में प्रविष्टि के योग्य बनता है। यह समावर्तन संस्कार का दीक्षान्त उपदेश आज भी पूर्णतः प्रासंगिक एवं परम उपादेय तथा महत्वपूर्ण अनुकरणीय आदर्श है। यथोक्त है कि- **'वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति, सत्यं वद, धर्मं चर। स्वाध्यायान्माप्रमदः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृ देवो भव, पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि, तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि।'** (तैत्तिरीयोपनिषद-शिक्षावल्ली-ग्यारहवां अनुवाक्)।

तेरहवां संस्कार 'विवाह संस्कार' कथ्य है। सोलह संस्कारों में यह संस्कार सर्वप्रमुख और सबका आधारभूत होने के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण संस्कार है। यह गृहस्थाश्रम में प्रविष्टि का संस्कार है। इसमें देवों को साक्षी कर एक सुभग दम्पति के मंगलकारी जीवन की सुखद शुभकामना की सुन्दर अभिव्यक्ति सुरम्यरूप से वेदमंत्र से निरूपित है। (इसमें पत्नी रूप में एवं पति रूप में दम्पति पस्पर कामना करते हैं कि) 'हम ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए परस्पर हाथ ग्रहण करते हैं। हम परस्पर वृद्धावस्था तक सुख पूर्वक रहें। भग, अर्यमा, सूर्य, इन्द्र आदि देवताओं ने हमें गृहस्थ धर्म दिया है। हम कल्याणपूर्वक सौ वर्ष तक जियें।' यथोल्लेख है कि-

गृभ्णामि तेसौभगत्वाय हस्तंमया पत्या जरदष्टिर्यथ सः।
भगो, अर्यमा, सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः।।
ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावति, संजीव शरदः शतम्।।

-अथर्ववेद 14.1.50,51

वैवाहिक सप्तपदी हमारे चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व विकास की रीढ़ के रूप में प्रख्यात एवं महत्वपूर्ण है। वर वधू के साथ-साथ चलने के सप्तपद उनके व्यक्तित्व निखार और शुभकृतित्व के प्रति सर्वदा ही सचेतन करते हैं। यह सप्तपदी इस प्रकार कही गई है कि–

'एकमिषे, द्वे ऊर्जे, त्रीणि रायस्यपोषाय, चत्वारिमायोभवाय, पञ्च पशुभ्यः षड्ऋतुभ्यः सखे सप्तपदाभव मामनुव्रता भव'।

-पारस्कर गृहस्थ सूत्र

अर्थात 'प्रथम' पद सद्न्नग्रहण के लिए हो अर्थात् हम ईमानदारी से अर्जन कर उसका उपयोग करें। द्वितीय पद ऊर्जा या शक्ति प्राप्ति के लिए हो। तृतीय पद सम्पन्नता हेतु, चतुर्थ पद धर्मार्थ कामार्पूति हेतु, पंचम पद गाय आदि जीवधारियों के संरक्षण हेतु, छठवां पद षड् ऋतुओं के अनुसार उनके अनुकूल जीवन यापन में सामर्थ्य सम्पन्न बनाने का हो तथा सप्तमपद हमारी परस्पर प्रगाढ़ मैत्री का प्रतीक बने। यहां पति के समान पत्नी के अधिकारों का निरूपण गृहस्थाश्रम के साफल्य का प्रमुख आधार निर्दिष्ट है। भारतीय मानव समाज में गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता उक्त सुचिन्तन से ही प्रतिष्ठित है।

चौदहवां संस्कार 'वानप्रस्थ' है। इसमें गृहस्थाश्रम का समुचित उपभोग एवं उपयोग कर व्यक्ति वानप्रस्थी बनता है। पचास से पचहत्तर वर्ष की आयु तक इस वानप्रस्थ-आश्रम का समय है। पचास वर्ष की आयु में यह संस्कार व्यक्ति के आत्म-कल्याण एवं देश तथा समाज सेवा के लिए सम्पन्न होता है एवं पचहत्तर वर्ष पर्यंत इसकी सुस्थिति सुनिश्चित रहती है।

पंद्रहवां संस्कार 'संन्यास आश्रम के रूप में शास्त्रों में उल्लिखित है। व्यक्ति की आयु का चतुर्थ भाग अर्थात् पचहत्तर वर्ष की आयु से जीवन पर्यंत

यह संन्यास आश्रम कथ्य है। पचहत्तर वर्ष की आयु के पश्चात् व्यक्ति को केवल आत्म कल्याण में ही निरत रहने का यह संस्कार है। यहां कामनाओं की पूर्ण तिलांजलि होती है। मोहादि विकारों से पूर्ण विरक्ति इस संस्कार का उद्देश्य निर्दिष्ट है।

सोहलवां संस्कार 'अंत्येष्टि' संस्कार है। आत्मा का अमरत्व और शरीर की नश्वरता का पावन परिज्ञान इस संस्कार से प्रत्यक्ष होता है। इस संस्कार से व्यक्ति को सत्कर्म के सुचिन्तन का सुबोध प्राप्त होता है। यथोल्लेख है कि–

वायुरनिलममृतमर्थदं भस्मान्तमिदं शरीरम्।
ओं क्रतो स्मर कृतं स्मर, क्रतोस्मर, कृतं स्मर।

-ईशावास्योपनिषद-17

निष्कर्ष यह है कि संस्कार हमारे अच्छे चरित्र के निर्माण का मूल आधार हैं। यही हमारे बुद्धि के विकास एवं व्यक्तित्व के पूर्ण निखार में सापेक्ष रूप से सहयोगी हैं। ये पवित्र संस्कार ही हमारे पावन जीवन मूल्य हैं। धर्म के जो श्रेष्ठ दशलक्षण - धैर्य, क्षमा, इन्द्रिय निग्रह, सज्जनता, पवित्रता, मननिग्रह, विवेक, विद्या, साधना एवं सत्य हैं, वे इन षोडश संस्कारों की नींव पर ही सुदृढ़ता प्राप्त करते हैं। मानव जीवन मूल्य- मानवता, सत्य, सत्कर्म, समाज सेवा, आत्मज्ञान, विनम्रता, पवित्रता, कर्मठता, सत्पंथ ग्रहण, सकारात्मक सोच, समाज कल्याण, राष्ट्रभक्ति, बड़ों का समादर, छोटों के प्रति स्नेह, समानता, सद्भाव, सहृदयता, करुणा, सेवा, दया, अपरिग्रह, निर्विकारिता, प्रकृति प्रेम, प्राणिप्रेम आदि सद्गुण कहे गये हैं। ये सभी गुण हमारे शास्त्रों में उल्लिखित उपर्युक्त सोलह संस्कारों के अनुगामी हैं। हमारे ये संस्कार हमें 'सत्यंवद, धर्मंचर, पितृ देवोभव, मातृदेवो भव की अमूल्य शिक्षा देते हुए हमें मातृभूमि की सेवा के लिए उत्प्रेरित करते हैं। हमारा यह कर्तव्य बनता है कि हम सम्पूर्ण समाज और राष्ट्रोन्नयन के लिए अपनी अमूल्य थाती' इन सभी संस्कारों को पुनर्जीवित कर इन्हें अपनायें तथा इन्हें आचरण में लाकर सच्चरित्रनिर्माण कर अपने व्यक्तित्व का समग्र विकास करते हुए सद्गुणों समेत मूल्यपरक शिक्षा ग्रहण कर राष्ट्र और समाज के विकास में सहभागिता प्रदान करें। अंत में उल्लेख है कि-

'संस्कारेण प्रशुद्धिः स्यात्, बुद्धि, शुद्धा भवेत् ननु।
समुन्नतिः त्वनेनैव, चानेनैवात्मदर्शनम्'

अस्तु 'मूल्यपरकशिक्षा' संस्कार की शिक्षा से देय है, जिससे चरित्रनिर्माण और व्यक्तित्व का समग्र विकास सहज ही प्राप्य है।

■

- श्रीमती लक्ष्मी गुप्ता भवन,
उद्योगविभाग के पास
सिविल लाइन्स
दतिया (म.प्र.) 475661
मो. 9826249448

विद्या तो मनुष्य की अतुल कीर्ति है। भाग्य का नाश होने पर यह मनुष्य का आश्रय है तब यह कामधेनु के समान है, विरह में रति के समान है। यह मनुष्य का तृतीय नेत्र है यह सत्कार का घर है, कुल की महिमा है और रत्नों के बिना ही आभूषण है। अतः अन्य सब विषयों की उपेक्षा करके विद्या प्राप्त करो।

- शिव पुराण

श्रीमद्भगवद्गीता और कुर्आन में निहित दार्शनिक पक्ष एवं मूल्य

डॉ. मोईनुद्दीन

श्रीमद्भगवद्गीता और कुर्आन-ए-मजीद हिन्दुओं और मुसलमानों के पवित्र धार्मिक ग्रंथों में शुमार होते हैं। भारतीय परम्पराओं के अनुसार श्रीमद्भगवद्गीता का मुकाम व मर्तबा उपनिषद और ब्रह्मसूत्रों के समान है। यह ग्रंथ महाभारत युद्ध के तनाजुर में वजूद में आया। दरअसल यह पवित्र ग्रंथ उन शिक्षाओं और उपदेशों का खुलासा है जो महाभारत के दौरान श्री कृष्ण ने राजकुमार अर्जुन को दिए थे। कुर्आन-ए-मजीद का शुमार चार आसमानी सहीफों में होता है। खुदा-ए-पाक ने हजरत मुहम्मद (स.अ.व.) पर इस मुकद्दस ग्रंथ को नाजिल फरमाया था। हजरत जिब्रील-ए-अर्मी नामक एक फरिश्ते के जरिए जो पैगाम हजरत मुहम्मद (स.अ.व.) को दिया जाता था उसे रावियों से लिखवाकर यकजा किया गया और कुर्आन-ए-मजीद मौजूदा सूरत में हम तक पहुंचा।

श्रीमद्भगवत गीता और कुर्आन-ए-मजीद दोनों ही ऐसे पवित्र ग्रंथ हैं जिनकी प्रासांगिकता और सार्थकता हमेशा कायम रही है और रोज-ए-महेशर तक कायम व दायम रहेगी। इसीलिए प्रसिद्ध दार्शनिक विचारक स्वामी विवेकानन्द ने यह बात कही थी कि भारत का उत्थान और उद्धार उसी वक्त संभव है जब हमारे एक हाथ में गीता और एक हाथ में कुर्आन हो। यह दोनों ही ग्रंथ ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग की शिक्षा प्रदान करते हैं। गीता की यह शिक्षा कितनी सच है कि कर्म करो फल की इच्छा मत करो। कर्मयोगी इंसान कभी हताश और निराश नहीं होता। कुर्आन-ए मजीद भी फिक्र -ओ-अमल और सख्त कोशी की शिक्षा देता है। पुनर्जन्म के सिलसिले में गीता और कुर्आन में थोड़ी सी भिन्नता है। इस्लाम पुनर्जन्म में विश्वास नहीं रखता जबकि गीता के अनुसार पुनर्जन्म का तस्व्वुर और उससे संबंधित मान्यताएं पढ़ने और सुनने को मिलती हैं।

इन्द्रियों पर काबू रखने का संदेश इन दोनों ही ग्रंथों में निहित है। गीता कहती है कि इच्छाओं पर नियंत्रण रखकर जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त की जा सकती है। कुर्आन का फरमान है कि नफ्सकुशी के माध्यम से इंसान कामयाबी व कामरानी के साथ काबिल-ए-कद स्थान प्राप्त कर सकता है। गीता और कुर्आन दोनों ने समान रूप से वासना और विकार को इंसान के लिए घातक बताया है। लोभ, लालच, क्रोध, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि को भी इन दोनों पवित्र ग्रंथों ने पतन और जवाल का सबब कहा है। इसके विपरीत यदि मनुष्य सदाचार, संयम, सेवाभाव, इंसानियत, महर-ओ-मुहब्बत, यकजहती, अम्न-ओ-अमान, मसावात पर इन दोनों ग्रंथों ने बहुत जोर दिया है। हिंसा और मासूमों पर अत्याचार का भी दोनों ग्रंथों ने विरोध किया है।

गीता और कुर्आन ने समान रूप से एकेश्वरवाद का पैगाम दिया है। पूजा, उपासना और इबादत के लिए सिर्फ और सिर्फ ईश्वर या अल्लाह का तजकरा किया गया है। मोक्ष प्राप्ति का तसव्वुर भी दोनों धर्म ग्रंथों में एक जैसा है। गीता में कहा गया है कि यदि हम अच्छे काम करेंगे और हमारा चरित्र उत्तम होगा और साथ ही हमने पुण्य किया है तो हमें मोक्ष अवश्य प्राप्त होगा। कुर्आन में यह कहा गया है कि अल्लाह और पैगम्बर के बताए रास्तों पर चलने व उनका अनुसरण करने पर रोजे महशर या कयामत में हमारी बखशिश यानी मगफिरत होगी। बखशिश अथवा मगफिरत मोक्ष शब्द का ही पर्यावाची है। जन्नत और दोजख अर्थात स्वर्ग व नरक के संबंध में भी गीता और कुर्आन की मान्यताएं समान हैं। सत्कर्मों और नेक चलन बन्दों को जन्नत यानी स्वर्ग और बदचलन, अधर्मी, क्रूर लोगों का स्थान दोजख यानी नरक बताया गया है।

दान, दक्षिणा, खैरात, इमदाद और दीन दुखी की सेवा पर इन दानों महान् ग्रंथों में यह दर्शाया गया है कि ईश्वर ने जो धन एवं सम्पन्नता इंसानों को प्रदान की है उसमें से कुछ हिस्सा उन निर्धन और असहाय लोगों का भी है जो अभावों में जीवन व्यतीत करते हैं। कई बार ऐसे लोग स्वााभिमानी प्रवृत्ति के कारण अपना दुख लोगो पर जाहिर नहीं करते। अतः हमें ऐसे लोगों को तलाश करके उनकी सहायता करनी चाहिए। गीता का आदेश है कि दान, पुण्य और सहायता में आडम्बर और प्रोपेगण्डा शामिल न हो, वहीं कुर्आन का फरमान है कि सहायता अथवा इमदाद इस तरीके से की जाए कि एक हाथ से सहायता की जाए तो दूसरे हाथ को पता नहीं चले। इसीलिए कुछ भले लोग गुप्त रूप से दान, पुण्य व सहायता के कर्म को पोशीदा रखते हैं जबकि सस्ती शौहरत पसंद लोग अपने नाम के पत्थर लगाने और इश्तिहार बाजी में मसरूफ नजर आते हैं जो गीता और कुर्आन के आदेशों की सरासर खिलाफवर्जी की श्रेणी में आते हैं।

गीता और कुर्आन ने संसार को नश्वर और क्षणभंगुर माना है। गीता के नवें अध्याय के बाईसवें श्लोक में कहा गया है कि जो जन्मा है उसकी मृत्यु निश्चित है। कुर्आन भी यही बात कहता है कि 'कुल्लो नफसिन जायकतुल मौत' अर्थात् हर प्राणी को मौत का मजा चखना है। गीता दर अस्ल वेदों और उपनिषदों का सार, निचोड़ है। इसे कुछ विद्वानों ने उपनिषदों रूपी कामधेनु का दूध भी कहा है। इन दोनों ही ग्रंथों को धर्मगुरुओं ने अपने प्रवचनों में ईश्वरीय वाणी कहकर संबोधित किया है। यह दोनों ग्रंथ अलग-अलग भाषाओं अर्थात् अरबी और संस्कृत में रचे गए किन्तु दोनों का सार और संदेश एक समान है। गीता एक संवाद के रूप में और कुरान एक खिताब के रूप में वजूद में आए तत्पश्चात् इन्हें पुस्तकीय रूप में ढाला गया।

ये दोनों ग्रंथ इंसानों में कोई अंतर नहीं करते। दोनों में कर्म ही जीवन और जीवन ही कर्म है का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया है। यदि सम्पूर्ण संसार के लोग इन धर्म ग्रंथों की शिक्षाओं और संदेशों का पालन करते हुए जीवन व्यापन करें तो संसार की सभी प्रकार की समस्याएं समाप्त हो जाएंगी। ये ग्रंथ अगरबत्ती लगाने और ताक में रखने के लिए नहीं बल्कि अपने मन, मस्तिष्क और आत्मा में उतारने के लिए हैं। अमली जिन्दगी अर्थात् प्रायोगिक जीवन जीने की प्रेरणा इन ग्रंथों का पैगाम है। अंत में इस शेर के साथ मैं अपनी बात समाप्त करना चाहूंगा।

मुसीबतों ने घेर लिया है इसीलिए इंसान को।
भूल रहे हैं दुनिया वाले गीता और कुरान को।।

■

- मकान नं. 395-ए,
आजाद नगर कोटडा
पुष्कर रोड,
अजमेर-305001 (राज.)

सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के जनक : स्वामी विवेकानन्द

डॉ. आनन्द कुमार शर्मा

भारतीय अध्यात्मवाद के महान उत्थानक स्वामी विवेकानन्द, भारतीय सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के जनक थे। स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा धर्म, संस्कृति, राष्ट्रीयता के एकाश्म और एकात्मवाद पर अवलंवित थी। स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा में राष्ट्रीयता की आधारभूत पृष्ठभूमि के बीज सनातन हिन्दू धर्म और संस्कृति में निहित थे और इसी बीज से राष्ट्रीयता का वट वृक्ष, पुष्पित-पल्लवित होकर तन कर खड़ा हो सका। 11 सितम्बर, 1893 ई. की शिकागो की 'विश्व धर्म संसद' में स्वामी विवेकानन्द ने सनातन हिन्दू धर्म - संस्कृति की श्रेष्ठता को दृढ़ता से स्थापित कर दिया था। आधुनिक सभ्य राष्ट्र हमारे धर्म के असली स्वरूप से नितांत अनभिज्ञ थे, स्वामी विवेकानन्द ने अपनी आध्यात्मिक शिक्षाओं से विश्व की आँखें खोल दी थी।[1] संपूर्ण अमेरिका स्वामी विवेकानन्द की विद्वत्ता से अत्यंत प्रभावित हुआ। मूलतः भारत के इस संदेशवाहक की अमेरिका पर गहरी छाप पड़ी थी।[2] अमेरिका के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'द न्यूयॉर्क हेराल्ड' ने स्वामी विवेकानन्द को विश्व धर्म संसद का सबसे महान् व्यक्ति बताते हुए लिखा कि, ऐसे ज्ञानी देश में धर्म प्रचारक भेजना बेबकूफी है।'[3] वस्तुतः भारत की महान् विभूति स्वामी विवेकानन्द भारतीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के एक ऐसे अध्यात्मवादी विद्वान थे, जिनके ज्ञान से सारा संसार स्तब्ध रह गया था। भारतीय धर्म एवं संस्कृति की पताका को उन्होंने पूरे विश्व में बड़ी दृढ़ता के साथ फहराया और यह प्रमाणित कर दिया कि, भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है।[4]

स्वामी विवेकानन्द ने धर्म के माध्यम से सुसुप्त भारतीयों को जागृत करने का प्रयास किया था। उनकी स्पष्ट धारणा थी कि, धर्म हमारे जातीय जीवन का मेरुदण्ड निर्धारित करता है।[5] उनकी चिंतनशील प्रवृत्ति ने धर्म को 'भारत की आत्मा' के रूप में प्रस्तुत किया था। उनका मानना था कि, धर्म भारत का मुख्य आधार होने के साथ ही, भारत की आत्मा है,[6] जिस प्रकार जीवित व्यक्ति के शरीर में आत्मा का वास होता है, उसी प्रकार भारत माता की शरीर रूपी आत्मा में धर्म का वास है। धर्म के अभाव में भारत की आत्मा की परिकल्पना नहीं की जा सकती है। स्वामी विवेकानन्द धर्म को राष्ट्र निर्माण का प्रेरक तत्व मानते थे, उनका मानना था कि, धर्म किसी भी राष्ट्र को आंतरिक एवं बाह्य शक्ति प्रदान करने वाला महान तत्व होता है। वस्तुतः धर्म मनुष्य के भीतर निहित देवत्व का विकास है।[7] स्वामी विवेकानन्द का विचार था कि, धर्म भारत जैसे राष्ट्र को अद्भुत शक्ति प्रदान करेगा। भारत में नवसंचार एवं नवउत्थान के लिए धर्म शक्ति का

कार्य करेगा। स्वामी विवेकानन्द का विचार था कि, भारत को संगठित करने के लिए धर्म की शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, क्योंकि धर्म में संगठित करने की अद्भुत क्षमता होती है और एक ही धर्म के लोग राष्ट्र निर्माण के लिए संगठित अवश्य होंगे। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि, मानव मस्तिष्क के लिए धर्म सबसे बड़ी प्रेरक शक्ति है। आध्यात्मिक आदर्शों पर चलने से हममें अकूत शक्ति आती है।[8] वस्तुतः विवेकानन्द धर्म की शक्ति के माध्यम से सारे देश के लोगों को संगठित होने का मूल मंत्र प्रदान कर रहे थे। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि, धर्म समस्त शक्तियों में श्रेष्ठ होता है और धर्म के आह्वान पर लोग आसानी से संगठित भी हो जायेंगे। जब व्यक्ति एक ही विचारधारा को स्वीकार करते हुए संगठित हो जायेंगे, तो उनसे यथेष्ठ उद्देश्य की प्राप्ति की जा सकती है।

स्वामी विवेकानन्द के मत का सीधा-सादा अर्थ यह है कि, धर्म जो भारत के लोगों की आत्माओं में निवास करता है का सदुपयोग करके भारत के जन मानस को भारत के हित में संगठित किया जाये। तात्पर्य यह है कि, धर्म का सदुपयोग करते हुए भारत की जनता को अपने राष्ट्र-धर्म के प्रति जागृत किया जाये। इस माध्यम से भारत की आम जनता अपने राष्ट्र के कल्याण के लिए सचेत हो सकेगी और उसमें अपने देश के प्रति चेतना का विकास होगा। स्वामी विवेकानन्द ने 'हिन्दू धर्म' को भारत का प्राण तत्व मानते हुए 'हिन्दू धर्म' को भारत के भाग्य के साथ अभिन्न रूप से जोड़ा है और हिन्दुओं का आव्हान करते हुए कहा था कि, हे हिन्दुओं तुम ईश्वर की संतान हो .....पवित्र और पूर्ण आत्मा हो ..उठो! हे सिंहो।[9] विवेकानन्द ने हिन्दुत्व के गौरव गान से हिन्दुओं को जागृत करने का प्रयास किया। विवेकानन्द की स्पष्ट धारणा थी कि जिस प्रकार व्यक्ति के शरीर में रक्त का प्रवाह होता है, ठीक उसी प्रकार भारत रूपी शरीर में हिन्दुत्व का प्रवाह होता है। वे हिन्दू धर्म को विश्व का सर्वश्रेष्ठ धर्म मानते थे, उनका मानना था कि, हिन्दू धर्म समुद्र के समान है, जिसमें अनेक प्रकार की संस्कृतियाँ ठीक उसी प्रकार आकर विलीन हो गयी हैं, जिस प्रकार कि विभिन्न नदियाँ समुद्र में आकर अपना अस्तित्व विलीन कर देती हैं। वस्तुतः हिन्दू धर्म ही एकमात्र सार्वभौमिक धर्म हो सकता है।[10]

स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि, हिन्दू जाति के जीवन की मूल शक्ति आध्यात्मिकता है।[11] विवेकानन्द ने हिन्दुओं की आध्यात्मिक शक्ति को जागृत किया। उनके ज्ञान चक्षु खोले और कहा कि, शक्तिशाली बनो, साहसी बनो, निष्कपट बनो, तनकर खड़े हो जाओ क्योंकि, दुर्बलता पाप है।[12] स्वामी विवेकानन्द कहते थे, हे हिन्दुओं आप आध्यात्मिक रूप से अत्यंत शक्तिशाली हो और यह जान लो कि, संसार को हिला देने वाले सदा आध्यात्मिकता की पृष्ठभूमि से ही आविर्भूत होते हैं।[13] वे सदैव कहते थे कि, हिन्दू धर्म के अनुयायियों को यह जान लेना चाहिए कि, विश्व के समस्त प्राणियों का आत्म तत्व, उन्हीं की आत्मा का ही एक रूप है। विविधता में एकता, यही प्रकृति की रचना है और हिन्दुओं ने इसे भली भाँति पहचाना है।[14] इसीलिए केवल भारत में दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता है।[15] यदि देखा जाये तो स्पष्ट हो जाता है कि, विवेकानन्द एक प्रकार से हिन्दू धर्म को विश्व का प्राचीनतम धर्म मानते हुए बताते हैं कि, विश्व के सभी धर्म हिन्दू धर्म के आत्म तत्व से ही प्रभावित हैं। विवेकानन्द कहते थे कि, हिन्दू धर्म भू-मण्डल का एक ऐसा धर्म है, जो अन्य धर्मो की अपेक्षा सर्वाधिक रूप से और दृढ़ता के साथ 'मानवता के गौरव' को प्रतिष्ठित करता है।[16] विवेकानन्द को हिन्दूधर्म में व्याप्त कुरीतियों से भारी क्लेश होता था। इसके लिए वे धर्म को नहीं, अपितु पाखण्डी पण्डित एवं पुरोहित वर्ग को दोषी मानते थे।[17]

विवेकानन्द हिन्दू धर्म को दुनियाँ का सबसे पवित्र और उत्कृष्ट धर्म मानते थे, उनकी स्पष्ट और दृढ़ धारणा थी कि, विश्व का कोई भी देश धर्म और आध्यात्म ज्ञान के क्षेत्र में हिन्दू और हिन्दू धर्म का

मार्गदर्शन नहीं कर सकता है। स्वामी विवेकानन्द का मानना था कि, विश्व को भारत जो कुछ दे सकता है, वह है धर्म। सारी मनुष्य जाति की उन्नति के लिये हिन्दुओं को अपने आध्यात्मिक प्रकाश से जागृत करना चाहिए। इसीलिए हिन्दुओं का यह कर्त्तव्य है कि, संसार को धर्म का दान करें।[18] स्वामी विवेकानन्द का कहना था कि, सारा संसार सहिष्णुता और सद्भावना के लिए भारत का जितना ऋणी है, उतना और किसी देश का नहीं। इसीलिए भारतवर्ष भविष्य में श्रेष्ठता का अधिकारी होगा।[19] तथा भारत ही विश्व की आध्यात्मिक शक्ति बनेगा।[20]

स्वामी विवेकानन्द एक ऐसे राष्ट्रवादी चिन्तक थे, जिन्होंने तत्कालीन भारतीय समाज के उत्थान और प्रगति को राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक समझा। उनकी स्पष्ट धारणा थी कि, भारत के समग्र समाज के उत्थान से ही राष्ट्र का उत्थान होगा और इसी से राष्ट्र का नव जागरण होगा।[21] स्वामी विवेकानन्द ने अपने विचारों में सदैव सकारात्मक समानता पर आधारित 'सामाजिक व्यवस्था' को प्रश्रय प्रदान किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि, विवेकानन्द भारत की सामाजिक व्यवस्था को सकारात्मक विचारधारा एवं समानता के मानदण्डों पर आधारित देखना चाहते थे। विवेकानन्द भारत के सामाजिक विकास में समाज के प्रत्येक व्यक्ति की उपयोगी भूमिका निश्चित करना चाहते थे। इसके लिए समाज के सभी व्यक्तियों को धन, विद्या, ज्ञान उपार्जन करने के लिए एक समान अवसर मिलना चाहिए।[22] विवेकानन्द की स्पष्ट धारणा थी कि, भारतीय समाज के विकास में भारत के समाज के हर व्यक्ति को अपनी भूमिका को निभाना होगा। यदि प्रत्येक व्यक्ति ईमानदारी से अपनी भूमिका का पालन करे, तो ही समाज का विकास हो सकेगा। समाज के विकास के लिए विवेकानन्द सकारात्मक विचारधारा को आवश्यक मानते थे। उनका मानना था कि, समाज और व्यक्ति का अस्तित्व सकारात्मक कार्यों के लिए है। यदि समाज और व्यक्ति नकारात्मक कार्य करने लगेंगे तो समाज की व्यवस्था पर संकट उत्पन्न हो जायेगा। विवेकानन्द चाहते थे कि, मनुष्य को समाज के विकास के लिए अपनी ऊर्जा को सकारात्मक कार्यों में लगाना चाहिए, तभी समाज का यथेष्ठ विकास हो सकेगा। परोपकार्य में भारतीय संस्कृति की मानवता का मूल मंत्र छिपा हुआ है।[23] विवेकानन्द जानते थे कि, भारतीय संस्कृति लोगों को परोपकार्य के लिए प्रेरित करती है। भारतीय संस्कृति की आत्मा में आत्म त्याग और परोपकार्य के गुण स्पंदन करते हैं और इसी स्पंदन में भारतीय समाज की मानवता विद्यमान है। विवेकानन्द का मानना था कि, समाज के समुचित कल्याण और विकास के लिए समाज के व्यक्तियों को निःस्वार्थ भाव से सकारात्मक उद्यम करना चाहिए। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि, विवेकानन्द समाज के प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा करते थे कि, वह समाज के उत्थान और कल्याण के लिए निःस्वार्थ भाव से कार्य करेगा।[24]

स्वामी विवेकानन्द एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था की परिकल्पना करते थे, जो समानता पर आधारित हो। विवेकानन्द ने तत्कालीन भारतीय समाज को खुली आँखों से देखा और अपनी स्पष्ट प्रखर वाणी से समाज में व्याप्त कुरीतियों और अंधविश्वासों पर करारा प्रहार करने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। उन्होंने कड़े शब्दों में भारतीय समाज के विकृत होते स्वरूप पर अपनी असहमति प्रकट करते हुए कहा था कि, भारतवर्ष के गरीबों और निम्नवर्ग के लोगों की दशा देखकर मेरा हृदय फटा जाता है।[25] विवेकानन्द भारतीय समाज में व्याप्त असमानता की परिपाटी के सख्त विरोधी थे। विवेकानन्द का मन भारतीय समाज के विषमताओं के मकड़ जाल में जकड़े होने से द्रवित था, वे भारतीय समाज में सभी को समान देखना चाहते थे, उँच-नीच और जाति-पांति के विषम बंधनों के प्रति उनकी भृकुटी सदैव तनी रहती थी, वे समाज में मनुष्य का मनुष्य के प्रति भेद को समाप्त करना चाहते थे।[26] मनुष्य का

स्तर धन और जाति के आधार पर समाज में निर्धारित नहीं होना चाहिए, अपितु श्रेष्ठ गुणों के आधार पर व्यक्ति समाज में जाना, जाना चाहिए। विवेकानन्द भारतीय समाज में व्याप्त छुआछूत उँच-नीच एवं जाति भेद जैसे जहरीले तत्वों को समाप्त करना चाहते थे। केरल में व्याप्त भयावह जातिवाद को देखकर स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि, केरल तो एक पागलखाना हो गया है।[27] विवेकानन्द ने अस्पृश्यता (छुआछूत) को एक घृणित अपराध माना। उन्होंने बड़े ही तल्ख लहजे में कहा था कि, हम यह कैसे कह सकते है, हम मनुष्य हो के मनुष्य को छूते नहीं है, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की संगति से दूर भागता हैं। ये कैसा धर्म है, जिसके अनुयायी एक- दूसरे को छूने से डरते हैं, छूने से उनका धर्म नष्ट और भ्रष्ट हो जाता है। विवेकानन्द ने भारतीय समाज में व्याप्त छुआछूत पर गहरी संवेदना व्यक्त करते हुए भारतीयों से अपेक्षा की थी कि, वे छुआछूत को समाप्त करके स्वस्थ भारतीय समाज के निर्माण की ओर बढ़ेंगे। स्वामी विवेकानन्द ने छुआछूत पर प्रहार करते हुए कहा था कि, सभी प्राणियों को स्वयं अपनी आत्मा के समान देखो......मतछूओवाद एक प्रकार का मानसिक रोग है। संकीर्णता मृत्यु है। मुझको मत छूओ- सारा संसार अपवित्र है और केवल मैं ही पवित्र हूँ....मिथ्या है।[28]

स्वामी विवेकानन्द दलित और अस्पृश्य जातियों में सांस्कृतिक तत्वों के प्रसार-प्रचार के द्वारा उनके कल्याण और उत्थान की परिकल्पना करते हैं। विवेकानन्द का मानना था कि, दलितों एवं अस्पृश्य जातियों को भारतीय संस्कृति के उच्च प्रतिमानों की शिक्षा देनी चाहिए। उन्हें समाज का सुसंस्कृत नागरिक बनाकर, समाज में उच्च स्थान प्रदान किया जाना चाहिए। विवेकानन्द कहते थे कि, शिक्षा से आत्मविश्वास आता है, जीवन निर्माण के लिए समाज के सभी लोगों को शिक्षित होना चाहिए।[29] दीन हीन अवस्था को प्राप्त लोगों में आत्मबल और आत्मविश्वास बढ़ाकर उनका मनोबल बढ़ाना है।[30]

स्वामी विवेकानन्द ने जाति भेद को भारतीय समाज के लिए घातक तत्व माना। विवेकानन्द मानते थे कि, जाति भेद भारतीय सामाजिक व्यवस्था में सड़ांध पैदा कर रहा है। जाति भेद समाज के स्वरू प को घिनौना और विकृत बनाता जा रहा है। जाति भेद को समाप्त करने के लिए वे व्यक्ति के व्यक्तित्व को उन्नत बनाने को प्रमुख मानते थे। विवेकानन्द कहते थे कि, वर्तमान जातिभेद भारतवर्ष की उन्नति में बाधक है। वह संकीर्ण बनाता है, बाधा पहुंचाता है और अलग करता है। विचारों की प्रगति होने पर वह नष्ट हो जायेगा।[31] विवेकानन्द की स्पष्ट धारणा थी कि, व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को उन्नत करके जाति-भेद को चुनौती दे सकता है, क्योंकि उच्च सांस्कृतिक विचारधारा से परिपूर्ण व्यक्तित्व ही समाज की भेदभाव मूलक व्यवस्था को ध्वस्त कर सकता है। विवेकानन्द मानते थे कि, जाति व्यवस्था के स्थान पर गुणों पर आधारित 'वर्ण-व्यवस्था' को समाज में प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट है कि, विवेकानन्द जाति (जो जन्म पर आधारित है) को समाप्त करके समाज में वर्ण-व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे, जो व्यक्ति के गुणों पर आधारित होती थी। स्वामी विवेकानन्द ने बड़े ही सख्त और तल्ख शब्दों में कहा था कि, श्रमजीवी शूद्रों के शारीरिक श्रम पर ही समाज का ऐश्वर्य और शक्ति निर्भर है।[32] स्मरण रहे- राष्ट्र झोपड़ियों में बसता है। गरीबों में रक्तबीज की अक्षय जीवन शक्ति भरी है।[33] अतः उनका कल्याण और उन्नति हमारा कर्त्तव्य है। उन्होंने ब्राह्मणों की अनुदारता और उनकी प्रतिष्ठा का विरोध करते हुए, सामाजिक एकता का संदेश दिया।[34]

स्वामी विवेकानन्द ने सदैव सभी प्रकार के जाति-भेद, उँच-नीच, अमीर-गरीब जैसे अमानवीय और दकियानूसी विचारधारा का विरोध किया। उन्होंने मनुष्य के श्रेष्ठ गुणों का सदैव आदर किया और उन्होंने लोगों से आह्वान किया कि, वे अपने व्यक्तित्व को सांस्कृतिक गुणों से परिपूर्ण करके उच्च

बनायें। विवेकानन्द ने उच्च वर्णों से अपेक्षा की कि, गरीबों, अभावग्रस्तों, पीड़ितों, दलितों सभी की सेवा करें, ताकि उनका उत्थान हो सके। विवेकानन्द मानते थे कि, मनुष्य रूप की उपासना ही सबसे उत्तम है। दरिद्र नारायण की सेवा करो।[35] विवेकानन्द ने गरीबों, अभावग्रस्तों, पीड़ितों, दलितों सभी को अपने सीने से लगाया और उन्होंने कहा कि, सभी लोग रामकृष्ण की शरण में आ सकते हैं। वस्तुतः वे एक अखण्ड भारतीय जाति संगठित करने के पक्षपाती थे।[36] विवेकानन्द ने एक ऐसी सामाजिक - व्यवस्था की कामना की थी, जिसमें लोगों को उनके व्यक्तित्व और गुणों के आधार पर स्थान मिले और समाज में सभी लोगों के साथ समानता का व्यवहार किया जाये।[37] वस्तुतः स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी के समान ही मानव सेवा के प्रयोजन से ही राष्ट्र-जागरण के अभिलाषी थे।[38]

स्वामी विवेकानन्द ने देश की स्वाधीनता के लिए भारत की जनता के समक्ष उत्तेजक, प्रचण्ड और फौलादी राष्ट्रवाद की अवधारणा प्रस्तुत की। तत्कालीन विपरीत परिस्थितियों में बड़ी ही दृढ़ता के साथ युवाओं को ललकारा और कहा कि, भारत माता स्वाधीनता के लिए आपका आह्वान करती है। ***।।उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।।*** अर्थात् उठो, जागो, जब तक इच्छित वस्तु प्राप्त न हो, तब तक उसको पाने के लिये प्रयत्न करते जाओ। उठो जागो तुम्हारी मातृभूमि इस महा बलिदान की इच्छा कर रही है।[39] देश आज हमसे लोहे की माँस पेशियाँ और इस्पात के स्नायु माँग रहा है। अपने शरीर में अदम्य साहस, अदम्य उत्साह, अदम्य शक्ति और उच्च मनोबल का संचार करो।[40] दुर्बलता पाप है। साहसी और निष्कपट बनो।[41] हे युवकों, अपने फौलादी दृढ़ संकल्प से लक्ष्य को प्राप्त करो। वस्तुतः स्वामी विवेकानन्द जानते थे कि, भारत की अकूत ऊर्जा उसकी युवा शक्ति में निहित है। इसको जागृत करके ही स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है।

स्वामी विवेकानन्द की स्पष्ट धारणा थी कि, भारतीय राष्ट्रवाद का मूल तत्व धर्म में निहित है और धार्मिक सिद्धान्तों के आधार स्तम्भ पर नवीन भारत का निर्माण किया जा सकता है। मानव मस्तिष्क के लिए धर्म सबसे बड़ी प्रेरक शक्ति होता है। आध्यात्मिक आदर्शों पर चलने से हममें अकूत शक्ति का संचार होगा।[42] विवेकानन्द ने भारतीय राष्ट्रवाद की रीढ़ सनातन हिन्दू धर्म को ही माना है।[43] उनका मानना था कि, स्वर्णिम अतीत की नींव पर उज्ज्वल भविष्य का निर्माण किया जा सकता है। वैदिक ऋचाओं के घनघोष से देश में प्राण संचार करना है।[44] विवेकानन्द ने भारतीय राष्ट्रवाद की धुरी में सनातन हिन्दू धर्म और भारत माता को केन्द्र बिन्दु माना और कहा कि, 'अपने भारतीय होने पर गर्व करो', 'गर्व से कहो कि, भारत भूमि मेरी माता है', जन्मभूमि की सेवा को अपना परम कर्तव्य मानो। विवेकानन्द ने जोर देकर अपने शक्तिशाली शब्दों से कहा था कि, 'मेरे देशवासियों, मेरे भाई बन्धुओं भारत की भूमि को अपना स्वर्ग मानों, भारत के कल्याण को ही अपना कल्याण समझों।'[45] हे भारत की संतानों, मैं आज आपको भारत भूमि के पूर्व गौरव का स्मरण दिलाता हूँ...। आप का धर्म महान था, आपका अतीत गौरवशाली था। जननी-जन्मभूमि रूपी विराट देवता की उपासना करो।[46]

विवेकानन्द ने प्रगतिशील विचार देते हुए कहा था कि, भारतीय समाज के लोगों को प्रगति के लिए नवीन ज्ञान की प्राप्ति के लिए हमेशा तत्पर रहना चाहिए। ज्ञान ही शक्ति है और यह शक्ति प्राप्त करना हमारा उद्देश्य है।[47] हमें अपनी कूपमण्डूकता का त्याग करते हुए अपने व्यक्तित्व को उज्ज्वल करने का प्रयास करना चाहिए। इससे मनुष्य प्रगति करता हुआ शिखर की ओर अग्रसर होता है। स्वामी विवेकानन्द का कथन था कि, विश्वास, उत्साह और निर्भीकता से सब कुछ संभव है।[48] विवेकानन्द ने तत्कालीन अंधकार में डूबे भारतीय समाज के लोगों में आत्म विश्वास की ज्वाला को प्रज्वलित करते हुए कहा था कि, भारतीयों को अपने आप में विश्वास करना

सीखना होगा, अपने अंदर की शक्ति को पहचानकर दृढ़ बनना होगा, आत्मविविश्वास शक्तिशाली बनाने की ओर ले जाता है। क्योंकि, भारत का पुनरूद्धार भारत को ही करना है। संजीवनी तो अपने अंदर से ही मिलनी है।[49] विवेकानन्द ने भारतीयों में अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों के पालन की भावना को जागृत करने का प्रयास किया। विवेकानन्द की स्पष्ट धारणा थी कि, यदि व्यक्ति अपने कर्तव्यपथ पर निष्काम भाव से आगे बढ़ता जायेगा, तो उसे अधिकारों की प्राप्ति स्वतः हो जायेगी। स्वामी विवेकानन्द का कथन था कि, यदि भारतवासियों को अपने राष्ट्र का पुनरुत्थान वांछित है, तो उन्हें यह यत्न करना चाहिए कि, उनमें निःस्वार्थ सेवाभाव तथा आदर्श चारित्य आ जाए।[50]

स्वामी विवेकानन्द ने तत्कालीन गुलामी की बेड़ियों में जकड़े भारत की मुक्ति का सपना देखा था, जो स्वावलम्बी हो, शिक्षित हो, भय, भूख एवं भष्ट्राचार से मुक्त हो। मैं स्वदेश भक्ति में विश्वास करता हूँ.....अज्ञानता के काले बादलों ने सारे भारत को आच्छन्न कर लिया है।[51] इसीलिए ज्ञान प्राप्ति को जीवन का लक्ष्य बनाओ।[52] विवेकानन्द ने अपने आध्यात्मिक चिंतन को व्यावहारिक रूप में प्रकट करते हुए भारत के मानव के लिए यथार्थवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया था। उन्होंने भारतीय जन-जीवन को वास्तविकताओं से सामना कराने का प्रयास किया था। विवेकानन्द की स्पष्ट धारणा थी कि, भारत के लोगों को भारत की वास्तविक और धरातलीय हकीकतों को जानना होगा। हम भारत की जमीनी स्तर की वास्तविकताओं को जानकर ही एक सक्षम भारत का निर्माण कर सकेंगे। उन्होंने कहा कि, स्वाधीनता में चतुर्दिक उन्नति होती है और दासता में सभी प्रकार की अवनति निहित है।[53] विवेकानन्द ने तत्कालीन पराधीन भारत के जन मानस की दशा को देखकर लोगों से अपेक्षा की थी कि, हमें भारत के समाज के गरीब और निरक्षर लोगों के प्रति अपने कर्त्तव्यों को ईमानदारी के साथ निर्वहन करना होगा, तभी हम सभ्य मनुष्य होने के हकदार होगें। स्वामी विवेकानन्द का कथन था कि, समाज के सभी व्यक्तियों को धन, विद्या, ज्ञान उपार्जन करने के लिए एक समान अवसर मिलना चाहिए। स्मरण रहे - राष्ट्र झोपड़ियों में बसता है।[54] स्वामी विवेकानन्द ने संपूर्ण भारत का भ्रमण करके अपनी बौद्धिकता से प्राचीन भारत के गौरव को भारतीयों में जागृत कर दिया था। इससे राष्ट्र साँस्कृतिक नव जागरण की ओर बढ़ा। वस्तुतः विवेकानन्द की प्रखर वाणी से ही साँस्कृतिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। उन्होंने भारतीयों में भविष्य की उज्ज्वल आशा को संचारित करते हुए कहा कि, साहस का सूर्य उदित हो चुका है। भारत का उत्थान अवश्य होगा। वास्तव में स्वामी विवेकानन्द ही भारत की साँस्कृतिक राष्ट्रीयता के पिता थे।[55]

संदर्भ

1. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला) - भारत में विवेकानन्द, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1948, पृ. 420
2. रोम्यां रोलां (अनुवाद-सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय एवं रघुवीर सहाय) - विवेकानन्द (द लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द), द्वितीय संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (प्रयागराज), 1969, पृ. 9
3. दिनकर, रामधारी सिंह - संस्कृति के चार अध्याय, तृतीय संस्करण, उदयाचल, पटना, 1962, पृ. 595
4. शर्मा, डॉ. आनन्द कुमार- विवेकानन्द के स्वप्नों का भारत, युग प्रवर्तक विवेकानन्द, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति मंत्रालय, मध्य प्रदेश शासन, भोपाल, 2013, पृ. 36
5. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला) मेरी समर नीति, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1948, पृ. 24-25
6. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला) भारत में विवेकानन्द, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1948, पृ. 8
7. दिनकर, रामधारी सिंह - संस्कृति के चार अध्याय, तृतीय संस्करण, उदयाचल, पटना, 1962, पृ. 596
8. स्वामी विवेकानन्द- धर्म तत्व, तृतीय संस्करण, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1979, पृ. 14
9. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद - द्वारकानाथ तिवारी) - हिन्दू धर्म, द्वितीय संस्करण, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1950, पृ. 11-12
10. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- श्री गणेश पाण्डेय) जागृति संदेश, छात्र हितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग, 1939, पृ. 186

11. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला) - भारत में विवेकानन्द, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1948, पृ. 82
12. स्वामी विवेकानन्द- विवेकानन्द साहित्य, सप्तम खण्ड, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, 1962, पृ. 11, 65
13. स्वामी विवेकानन्द- धर्म तत्व, तृतीय संस्करण, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1979, पृ. 15
14. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद - द्वारकानाथ तिवारी) - हिन्दू धर्म, द्वितीय संस्करण, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1950, पृ. 24
15. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- श्री गणेश पाण्डेय)- जागृति संदेश, छात्र हितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग, 1939, पृ. 86
16. शर्मा, डॉ. आनन्द कुमार - विवेकानन्द के स्वप्नों का भारत, युग प्रवर्तक विवेकानन्द, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति मंत्रालय, मध्य प्रदेश शासन, भोपाल, 2013, पृ. 37
17. दिनकर, रामधारी सिंह - संस्कृति के चार अध्याय, तृतीय संस्करण, उदयाचल, पटना, 1962, पृ. 600-601
18. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- श्री गणेश पाण्डेय)- जागृति संदेश, छात्र हितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग, 1939, पृ. 77
19. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला) भारत में विवेकानन्द, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1948, पृ. 4 एवं 83
20. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- पं. जगदीश व्यास) मेरा जीवन तथा ध्येय, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1950, पृ. 4-5
21. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- श्री गणेश पाण्डेय) जागृति संदेश, छात्र हितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग, 1939, पृ. 21, 108-112
22. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- द्वारकानाथ तिवारी) जाति, संस्कृति और समाजवाद, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1953, पृ. 20-44, 82
23. शर्मा, डॉ. आनन्द कुमार-स्वामी विवेकानन्द का सामाजिक चिन्तन, KAAV INTERNATIONAL JOURNAL OF ARTS, HUMANITIES & SOCIAL SCIENCES, KIJAHS / OCT.- DEC. 2015 / VOL-2 / ISS-4 / A4, नई दिल्ली, 2015, पृ.27
24. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद-रघुवीर सहाय)- वर्तमान भारत, वक्तव्य/भूमिका, चतुर्थ संस्करण, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1951 पृ.1
25. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- द्वारकानाथ तिवारी) शिक्षा, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1956, पृ. 43
26. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- श्री गणेश पाण्डेय)- जागृति संदेश, छात्र हितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग, 1939, पृ. 48-52, 108-112
27. कृष्ण गोपाल- भारत की संत परंपरा और सामाजिक समरसता, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2015 पृ. 372
28. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद - द्वारकानाथ तिवारी) - जाति, संस्कृति और समाजवाद, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1953, पृ. 64-66
29. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- द्वारकानाथ तिवारी) - शिक्षा, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1956, पृ. 1-12
30. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला) मेरी समर नीति, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1948, पृ. 29-30
31. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद - द्वारकानाथ तिवारी) - जाति, संस्कृति और समाजवाद, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1953, पृ. 66-67
32. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद-रघुवीर सहाय) वर्तमान भारत, चतुर्थ संस्करण, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1951, पृ. 32-38
33. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- द्वारकानाथ तिवारी) जाति, संस्कृति और समाजवाद, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1953, पृ. 82, 87
34. दिनकर, रामधारी सिंह - संस्कृति के चार अध्याय, तृतीय संस्करण, उदयाचल, पटना, 1962, पृ. 600-601
35. स्वामी विवेकानन्द (अनु.- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला) भारत में विवेकानन्द, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1948, पृ. 489-490
36. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला) मेरी समर नीति, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1948, पृ. 17
37. शर्मा, डॉ. आनन्द कुमार-स्वामी विवेकानन्द का सामाजिक चिन्तन, KAAV INTERNATIONAL JOURNAL OF ARTS, HUMANITIES & SOCIAL SCIENCES, KIJAHS / OCT.- DEC. 2015/VOL-2 / ISS-4 / A4, नई दिल्ली, 2015, पृ. 29
38. रोम्यां रोलां (अनुवाद-सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय एवं रघुवीर सहाय)- विवेकानन्द (द लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द), द्वितीय संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (प्रयागराज), 1969, पृ. 116
39. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- श्री गणेश पाण्डेय) - जागृति संदेश, छात्र हितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग, 1939, पृ. 20
40. रोम्यां रोलां (अनुवाद-सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय एवं रघुवीर सहाय) - विवेकानन्द (द लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द), द्वितीय संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (प्रयागराज), 1969, पृ.112
41. स्वामी विवेकानन्द - विवेकानन्द साहित्य, सप्तम खण्ड, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, 1962, पृ. 11, 65

42. स्वामी विवेकानन्द- धर्म तत्व, तृतीय संस्करण, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1979, पृ. 14
43. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला) मेरी समर नीति, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1948, पृ. 24-25
44. रोम्यां रोलां (अनुवाद-सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय एवं रघुवीर सहाय)- विवेकानन्द (द लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द), द्वितीय संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (प्रयागराज),1969, पृ. 126
45. शर्मा, डॉ? आनन्द कुमार - विवेकानन्द के स्वप्नों का भारत, युग प्रवर्तक विवेकानन्द, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति मंत्रालय, मध्य प्रदेश शासन, भोपाल, 2013, पृ. 39
46. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- श्री गणेश पाण्डेय) जागृति संदेश, छात्र हितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग, 1939, पृ. 91,120
47. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला एवं प्रो. दिनेशचन्द्र गुह)- राजयोग, तृतीय संस्करण, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1961, पृ. 33
48. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- श्री गणेश पाण्डेय) - जागृति संदेश, छात्र हितकारी पुस्तकमाला, प्रयाग, 1939, पृ. 21
49. रोम्यां रोलां (अनुवाद-सच्चिदानंद वात्स्यायन अज्ञेय एवं रघुवीर सहाय)- विवेकानन्द (द लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द), द्वितीय संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (प्रयागराज), 1969, पृ. 101
50. स्वामी विवेकानन्द (अनु.-रघुवीर सहाय)-वर्तमान भारत, वक्तव्य/भूमिका, चतुर्थ संस्करण, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1951 पृ.1
51. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला) मेरी समर नीति, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1948, पृ. 32
52. स्वामी विवेकानन्द- धर्म तत्व, तृतीय संस्करण, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1979, पृ. 30
53. स्वामी विवेकानन्द - विवेकानन्द साहित्य, सप्तम खण्ड, अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, 1962, पृ. 63
54. स्वामी विवेकानन्द (अनुवाद- द्वारकानाथ तिवारी)- जाति, संस्कृति और समाजवाद, श्री रामकृष्ण आश्रम, धन्तोलि, नागपुर, 1953, पृ. 82
55. दिनकर, रामधारी सिंह - संस्कृति के चार अध्याय, तृतीय संस्करण, उदयाचल, पटना, 1962, पृ. 594 एवं 607

■

डॉ. आनन्द कुमार शर्मा,
बालाजी - विहार कॉलोनी,
गुढ़ी - गुढ़ा का नाका,
लश्कर, ग्वालियर, (म. प्र.) - 474001,
मो. : 09074606019

तीन प्रश्न

राजा मानसिंह अक्सर अपने दरबार में पहेलियां पूछा करते थे। जो कोई भी उनके प्रश्न का जवाब नहीं दे पाता था, वह उसे सजा देते थे। एक दिन एक आदमी राजदरबार में आया और मानसिंह को चुनौती देते हुए बोला, 'यदि आपने मेरे तीन प्रश्नों के सही उत्तर नहीं दिए तो आपको मुझे अपना सिंहासन देना होगा।' राजा मानसिंह ने उसकी बात मान ली। उस व्यक्ति ने तीन प्रश्न पूछे, 'हवा से भी अधिक तेज कौन है? परेशानी के समय सहायता कौन करता है? विश्व की सबसे मीठी वस्तु कौन-सी है?' राजा ने बहुत सोचा। लेकिन वह उसके प्रश्नों के उत्तर नहीं दे पाये। अब राजा को सिंहासन खोने का डर लगने लगा।

उस व्यक्ति ने कहा, यदि आप मुझसे ये वादा करें कि अब आप कभी लोगों से प्रश्न पूछकर उन्हें सजा नहीं देंगे तो मैं सिंहासन पर दावा छोड़ दूंगा। राजा ने उससे वादा किया और तीनों प्रश्न के उत्तर जानने चाहे। वह व्यक्ति बोला- 'हवा से भी अधिक तेज मन की इच्छाएं हैं। परेशानी के समय किसी का सहारा मदद करता है और मिठाई से भी मीठी वाणी है।' यह कहकर वह व्यक्ति वहां से चला गया।

■

किन्नर और उनका निवास स्थान

डॉ. रचना चौहान

महाभारत, रामायण, श्रीमद्भागवतपुराण, शिव महापुराण, मत्स्य पुराण, केदारखंड, हरिवंशपुराण, वायु पुराण एवं कालिदास के नाटक विक्रमोर्वशीय में राजा इल के स्त्री रूप में परिणत होने के प्रमाण मिलते हैं, जिन्हें प्रथम किंपुरुष या किन्नर कहकर संबोधित किया जाता है। ऋषि वैशम्पायन महाभारत में कुरु वंश की परम्परा का वर्णन करते हुए मनु के दस पुत्र (वेन, धृष्णु, नरिष्यंत, नाभाग, इक्ष्वाकु, कारूष, शर्याति, इला, पृषध्र और नाभागारिष्ट) बताते हैं।[1] शंकरजी भी पार्वती को सूर्य पुत्र वैवस्वत मनु के नौ पुत्र एवं 'कन्यामेकामिलां चैव' (इला नामक पुत्री) बताते हैं।[2] 'इ' अर्थात काम, 'ला' (लातीति) अर्थात लाने वाली है, इसलिए यह इला है।[3] इला मनु के यज्ञ में मित्र- वरुण की आहुति से उत्पन्न होती है। मित्रावरुण इला को आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि तुम मनु के वंश को बढ़ाने वाले पुत्र 'सुद्युम्न' नाम से विख्यात होगी– 'मनोर्वंशकरस्त्वं हि सुद्युम्न इति विश्रुतः'।[4] अत्रि ऋषि के पौत्र बुध (चंद्रमा के पुत्र) को अपना परिचय देते हुए इला- 'अहं मनुसुता ब्रह्मन्'[5] कहती है।

रामायण के उत्तरकाण्ड में राम अपने छोटे भाई भरत और लक्ष्मण को बाल्हीक देश के राजा इल के इला बनने की कहानी विस्तार से बताते हैं कि राजा इल के पराक्रम से देवता, दैत्य, नाग, राक्षस और गंधर्व आदि सभी डरते थे।[6] एक बार शिकार खेलते-खेलते राजा इल शिवजी के प्रभाव से प्रभावित शरवण वन में प्रवेश कर जाते हैं। इस वन की विशेषता यह थी कि जो भी मनुष्य वन में प्रवेश करता था स्त्री रूप धारण कर लेता था। राजा इल भी वन में प्रवेश करते ही स्त्री रूप में परिणत हो जाते हैं। वे स्त्री हो जाने के कारण अपने राज्य में वापस भी नहीं जा पाते। उनके छोटे भाई इक्ष्वाकु उन्हें खोजते हुए शरवण वन के समीप पहुंचते हैं। वे पल भर में संपूर्ण वृत्तांत समझ जाते हैं और महादेव के पास इसका समाधान मांगने चले जाते हैं। शिवजी उन्हें अश्वमेध यज्ञ करने की सलाह देते हैं, जिससे राजा इल किंपुरुष होके फिर जन्म लेंगे- 'दत्वाकिम्पुरोषोवीरः सभविष्यत्संशयं'।[7] इक्ष्वाकु के अश्वमेध यज्ञ से 'चेल' नामक किन्नर उत्पन्न हुआ, वह एक महीने तक पुरुष और एक महीने तक स्त्री होकर बुध के घर में रहा- 'इक्ष्वाकोश्चाश्वमेधेन चेलः किम्पुरुषोऽभवत्।'[8] यही राजा इल किंपुरुष योनि में सुद्युम्न नाम से प्रसिद्ध हुए– 'इलः किम्पुरुषत्वेच सुद्युम्नइतिचोच्यते।'[9] चंद्रमा के पुत्र बुध एवं इला के संयोग से विद्वान पुरुरवा का जन्म हुआ। इला को पुरुरवा की माता भी और पिता दोनों कहा गया है– 'सा वै तस्याभवन्माता पिता चैवेति नः श्रुतम्।'[10]

एक अन्य कथा के अनुसार देवी पार्वती राजा इल को स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व का वरदान देती हैं। वे उन्हें एक मास स्त्री और एक मास पुरुष होने का आशीर्वाद देती हैं–'त्रिलोक्य सुन्दरी नारी मासेमेकमिलाभवत्'[11] बुध राजा इल से संपूर्ण वृत्तांत जानकर उन्हें किंपुरुष और उनकी सेना को किंपुरुषी कहकर संबोधित करते हैं–अथ किंपुरुषीभूत्वा शैलरोधासि वत्स्यथ।[12] बुध उन किंपुरुषियों को किंपुरुष पति प्राप्त होने का वरदान भी देते हैं। 'महाभारत' में भी राजा विराट के महल में अर्जुन का वृहन्नला रूप धारण कर उनकी कन्या को संगीत, गायन, वादन एवं नृत्य कला की शिक्षा देते हैं।[13] पद्म पुराण में भी भगवान विष्णु अर्जुन को त्रिपुर सुन्दरी देवी की आराधना करने की सलाह देते हैं। अर्जुन की साधना से प्रसन्न हो देवी उसे अर्जुनी होने का वरदान देती हैं– 'अर्जुनी सा वचो देव्याः श्रुत्वा चात्मयनीषितम्।'[14] इसी प्रकार नारद भी कृष्ण के आशीर्वाद से उपमा देवी का रूप धारण करते हैं।[15] महाभारत के उद्योग पर्व में अम्बा के पुरुष जन्म की कहानी है। शिव के आशीर्वाद से वह पहले कन्या उत्पन्न हुई, कुछ काल पश्चात् पुरुष हो गईं– 'पश्यतामेव विप्राणां तत्रैववान्तरधीयत।'[16] वह बाद में पांचाल राज के पुत्र शिखण्डी नाम से विख्यात हुई- 'कन्यां पञ्चालराजस्य सुतां तां वै शिखण्डिनीम्।'[17] भीष्म पितामह शिखण्डी पर वाण न चलाने का कारण बताते हुए कहते हैं कि– 'स्त्रियां स्त्रीपूर्वके चैव स्त्रीनाम्नि स्त्रीसरूपिणि'[18] अर्थात् जो स्त्री हो, जो पहले स्त्री रहकर पुरुष हुआ हो, जिसका नाम स्त्री के समान हो तथा जिसका रूप एवं वेश-भूषा स्त्रियों के समान हो; उस पर मैं वाण नहीं छोड़ता। लिंग पुराण में लिखा है कि दारुक नाम के असुर ने भी देवताओं को सताने के लिए स्त्री रूप धारण किया था।[19]

संस्कृत हिन्दी शब्द कोश, हिन्दी राष्ट्रभाषा कोश एवं वृहत् हिन्दी कोश में 'किन्नर' शब्द को किंपुरुष, बुरा या विकृत पुरुष कहकर परिभाषित किया गया है।[20] यह भी कहा है– जिसका मुख अश्व की भांति रहता है, किन्तु अन्यान्य समस्त अवयव मनुष्य तुल्य दिखाई पड़ते हैं। 'अमरकोश' में भी 'अश्वमुखत्वात्कुसिता नराः। किं क्षेपे धातु इति समासः[21]' ऐसा कह कर किन्नर शब्द की व्याख्या की गई है। किन्नर के अन्य संस्कृत पर्याय तुरंगवदन, मयु, अश्वमुख, गीतनोदी एवं हरिण नर्तक बताए गए हैं। 'विद्याधराऽपसरो– यक्ष– रक्षो–गंधर्व– किंनराः'[22] से ये लोग देवयोनि के दस नामों में गिने जाते हैं। राहुल सांकृत्यायन ने भी अपनी किताब (किन्नर देश में) में किन्नर या किंपुरुषों को देवयोनि ही स्वीकार किया है।[24] उन्हें प्रकाश का प्राणी कहा गया है।

किन्नरों की उत्पत्ति के विषय में पुराणों में भिन्न-भिन्न व्याख्याएं दी गई हैं। शिवमहापुरुराण में शिवात्सर्वे प्रवर्तन्ते लीयन्ते वृद्धिभागताः[25] अर्थात् भूत, वर्तमान तथा भविष्य और सभी प्राणी शिव से ही उत्पन्न होते हैं और अंत में उन्हीं में विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार किन्नरों की उत्पत्ति भी शिव से हुई है ऐसा माना जा सकता है। हरिवंश पुराण में संसार के समस्त जीवों की उत्पति (देवता, गन्धर्व, किन्नर आदि) 'एताश्चैताः प्रजा' सर्वा दक्षकन्यासु जज्ञिरे [26] दक्षकन्याओं से मानी गई है। पौराणिक कोश एवं वायु पुराण में किन्नरों को पुलह ऋषि का वंशज बताया गया है– 'पुलहस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्यालाश्व दष्ट्रिण। वानराः किंनराश्चैव मयूकिंपुरुषास्तथा।'[27] राजा मुचुकन्द एवं शुक्राचार्य समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति मधुसूदन से मानते हैं। अतः उन्हीं विष्णु भगवान ने 'त्वत्तोऽमरास्सपितरो यक्षगन्धर्वकिन्नराः'[28] आदि की उत्पत्ति की है। ऋषि वैशम्पायन ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न होने वाले मनुष्यों का वर्णन करते हुए किन्नरों की उत्पत्ति उनके पैरों से बताते हैं– 'पद्भ्यां सृजति भूतानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च। नरकिन्नरयक्षांश्व पिशाचोरगत्राक्षसान्।'[29] शिवमहापुराण एवं वायु पुराण में भी ब्रह्मा के शरीर से किन्नरों की उत्पत्ति बताई गई है– 'नरकिंनरारक्षांसि वयः पशुमृगोरगाः।[30] इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं में बृहद्बल का पुत्र बृहत्क्षण हुआ था। इन्हीं की वंश

परम्परा में मरुदेव के पुत्र सुनक्षत्र हुए तथा सुनक्षत्र से किन्नरों की उत्पत्ति हुई-मरुदेवस्ततः सुनक्षत्रतस्मात्किन्नरः और बाद में किन्नरों से अंतरिक्ष आदि की उत्पत्ति हुई। 'मत्स्यपुराण' में 'किन्नरगन्धर्वानरिष्टाऽजनमद्बहून्'[32] अरिष्टा स्त्री से बहुत से किन्नर एवं गन्धर्व पैदा हुए। पराशर ने विष्णु पुराण में सात मनु बताए हैं–स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, स्वायम्भुव और सूर्य पुत्र वैवस्वत। चैत्र और किंपुरुष आदि स्वारोचिष मनु के पुत्र थे– 'चैत्र किम्पुरुषाद्याश्च सुतारस्वारोचिषस्यतु।'[33] ययाति के पहले पुत्र यदु के वंश में गंधर्व, यक्ष, अप्सरा, आदित्य आदि के साथ किंपुरुष भी थे– 'यत्रशेषलोकनिवासो मनुष्यसिद्धगन्धर्वयक्षराक्षसगुह्यककिंपुरुषाप्सरा।'[34] ब्रह्म पुराण के एक प्रसंग में राजा आग्नीधृ अपने पौत्र धर्माराम (महर्षि सुतपा) को वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने का आदेश देते हुए समझाते हैं कि संसार में प्रत्येक मनुष्य सहस्त्रों बार जन्म लेता है और मरता है। जिस प्रकार तुम्हारे पिता कामदमन ने लता, मृग, स्त्री, पुरुष, अप्सरा, गण एवं किन्नर आदि रूपों में जन्म लिया है।[35]

किन्नर जाति के लोग किंपुरुष देश अथवा किन्नर देश में निवास करते हैं जो हिमालय के उत्तर भाग में अवस्थित है। जम्बू द्वीप का एक खंड भी किंपुरुष वर्ष के नाम से विख्यात है। कभी किंपुरुष वर्ष सारे हिमालय का नाम रहा होगा। किन्नर देशियों को आजकल आस-पास वाले कनौर कहते हैं। कश्मीर से पूर्व में नेपाल तक सारा ही पश्चिम हिमालय निश्चय ही किन्नर जाति का निवास स्थान था।[36] हिन्दू शास्त्रों में जम्बूद्वीप के नौ खंडों में से एक खंड को हेमकूट कहा गया है। किंपुरुष राजा आग्नीघ्र (प्रियव्रत का पुत्र) एवं पूर्वाचिति के नौ पुत्रों (नाभि, किंपुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्य, हरिष्मान्, कुरु, भद्राश्व एवं केतुमाल) में से एक पुत्र था जिसकी पत्नी का नाम प्रतिरूपा था। किंपुरुष हेमकूट का अधिपति और किंपुरुष वर्ष का राजा था–'हेमकूटं तु यद्वर्ष ददौ किंपुरुषाय तत्'[37] मत्स्य पुराण में भी लिखा है कि कुरु देश में समुद्र के समान दो विशाल नदियां शान्ति और माध्वी बहती थीं जिनके आसपास- 'किंपुरुषाद्यानियान्यष्टौ तेषुदेवोनवर्षति'[38] आदि खंड थे, जिनमें बिना प्रयास ही सिद्धि प्राप्त हो जाती थी– 'तेषां स्वभावतः सिद्धि सुखप्राया ह्ययत्नतः।'[39] वहां न किसी प्रकार का परिवर्तन होता था और न ही बुढ़ापे, मृत्यु का डर था। 'प्लक्षखण्डः किंपुरुषे सुमहान्नन्दोपमः'[40] किंपुरुष वर्ष में एक प्लक्षखण्ड है। यहां के लोगों की आयु दस हजार वर्ष बताई गई है। पुरुषों का रंग सोने के समान और स्त्रियाँ अप्सरा के समान होती हैं– 'सुवर्णवर्णाश्च नरा स्त्रियस्याप्सररोपमाः।[41]' ये मनुष्य शोक से रहित एवं शुद्ध हृदय वाले होते हैं। 'विष्णु पुराण' के एक प्रसंग में चित्रकारी में सर्वश्रेष्ठ चित्ररेखा सर्वगुण (रूप, गुण, पराक्रम, कुल) सम्पन्न मनुष्यों के चित्र बनाती है जिसमें दानव, गन्धर्व, यक्ष एवं किन्नर सम्मिलित हैं– 'किन्नरोरगयक्षाणां राक्षसानां समन्ततः'।[42] वायु पुराण में भी लिखा है कि हिमालय पूर्वीय समुद्र से लेकर पश्चिमीय समुद्र तक फैला हुआ है। इसमें जगह-जगह पर किन्नरों के नगर बसे हुए हैं जो गिनती में सौ के बराबर हैं। यहां की प्रजा सदा प्रसन्न रहती है—'अर्णवादर्णवं यावत्पूर्वपश्चायतेऽचले। किंनराणां पुरशतं निविष्टं वै क्वचित्क्वचत्।'[43] ये किन्नर गन्धर्वों के साथ अप्सारादि से पूजित होकर चंद्रलोक में प्रलय काल तक वास करते थे। कालिदास के 'कुमारसंभव' में भी किन्नर स्त्रियों का निवास स्थान हिमालय पर्वत ही बताया है-- 'अश्वानां मुखानीव मुखानि यासां ता अश्वमुख्यः किन्नरास्यः। स्यात्किन्नरः किम्पुरुष स्तुरंगवदनो मयुः।'[44] भगवान स्वयंभू के विवाह समारोह में भूत, पिशाच, देवता, मुनि आदि के साथ किन्नर भी शामिल हुए। वे हंसों से युक्त विमानों में देवताओं के समूह के साथ भगवान शिव की सेवा में तत्पर रहते थे। विवाह के पश्चात महादेव सती के साथ हिमालय के उच्च शिखर पर रहने चले गए जहां पर किन्नर, किन्नरियां, विद्याधरी आदि पर्वतीय युवतियों के साथ विहार करती थीं- 'विद्याधरीभिर्देवीभिः किन्नरीभिर्विहातिम्।'[45] नारद जी

भी हिमालय की शोभा का बखान करते हुए कहते हैं कि देवता, गन्धर्व और किन्नर अपने विमानों का अपमान करके पिता के घर के समान तुम में ही निवास करते हैं– 'पितुर्गुहद्वासन्ना देवगन्धर्वकिन्नराः'[46] जहां पर शिवजी समाधि लगाए हुए हैं। इसलिए हे हिमालय! आप धन्य हैं। 'केदारखण्ड' में लिखा है कि चंद्रपुर कैलाश शिवजी ने गंधर्वों को दे दिया था। जहां से गुजरती हुई गंगा दक्षिण के सागर में जाकर मिल जाती है। उत्तर से दक्षिण तक इस भागीरथी के किनारे पर शुनामुख, उर्दमरु एवं सिन्धु आदि अनेक देश बसे थे जिनमें 'गन्धर्वान्किन्नरान्यक्षान् रक्षोविद्याधरोगान्'[47] आदि जातियों के लोग निवास करते थे। उन देशों में अनेक गांव किंपुरुषों के भी थे। शीतान्त पर्वत को सत्वगुणों का घर, बहुमूल्य मणियों से सुशोभित, भौरों से गुंजायमान, मूंगे और सोने की पच्चीकारी से सुशोभित, अनेक किस्म के पुष्पों से सुसज्जित, स्वच्छ पानी के झरने, फूलों से सजी नावें अनेक नदियों की कलकल ध्वनियों से युक्त सुरम्य स्थान माना गया है। जिसकी अनेक गुफाओं में यक्ष, गन्धर्व आदि निवास करते हैं एवं किन्नर उन गुफाओं के चारों ओर विहार करते हैं–'पुष्पोडुपवहाभिश्च स्त्रवन्तीभिरलंकृतः। किंनराचरिताभिश्च दरीभिः सर्वतस्ततः।'[48] हरिकूट पर्वत (हरि का निवास स्थान), सूर्यामनु पर्वत के समीप कुमुद पर्वत को किन्नरों का निवास स्थान कहा है–'कुमुदे किंनरावासा।'[49] स्वर्ण पर्वत कहलाने वाला मेरु पर्वत (स हि स्वर्ण इति ख्यातः) देवताओं का स्वर्ग कहा गया है। जहां पर देवताओं के साथ किन्नरों के निवास स्थान भी थे, जहां पर किन्नर अपने इष्ट देव की पूजा करते हैं। 'महाभारत' में भी महऋषि वैशम्पायन पराक्रमी वीर पाण्डव श्रेष्ठ अर्जुन की वीरता का बखान करते हुए कहते हैं कि धवलगिरि को लांघकर द्रुमपुर के द्वारा सुरक्षित किंपुरुष देश में अर्जुन ने प्रवेश किया, जहां पर किन्नरों का निवास था– 'देशं किम्पुरुषावासं द्रुमपुत्रेण रक्षितम्'।[50] पौराणिक कोश में वर्णन है कि रावण ने अपने भाई कुबेर को युद्ध में परास्त कर लंका से बहिष्कृत कर दिया था। उनसे उनका पुष्पक विमान भी छीन लिया था। इसके बाद कुबेर गंधमादन पर्वत पर गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा किंपुरुषों के साथ रहने लगे- 'हित्वा स भगवाल्लकांमाविशद् गन्धमादनम्। गन्धर्वयक्षानुगतो रक्षः किंपुरुषैः सह।'[51] जहां पर कुबेर ने शिव की महातपस्या के बल से किन्नरों का आधिपत्य एवं धनेश्वरत्व का वर प्राप्त किया था। 'अमरकोश' में भी 'किंनराणामीशः इति कुबेरः'[52] लिखा है। इसी में कैलाश का अलकानगर कुबेर का निवास स्थान बताया गया है और 'स्यात् किंनरः किंपुरुषस्तुरंगवदनो मयुः'[53] ये चारों (किन्नर, किम्पुरुष, तुरंगवदन एवं मयु) कुबेर के दूत कहे गए हैं। महाभारत में नारद जी कुबेर की सभा का वर्णन करते हुए 'किन्नरा नाम गन्धर्वा नरा नाम तथा परे'[54] कहते हैं अर्थात् किन्नर तथा नर नाम वाले गंधर्व, मणिभद्र, धनद, श्वेतभद्र, गुह्यक, कशेरक, गण्डकण्डू, महाबली प्रद्योत, गजकर्ण, विशालक, विभीषण आदि लाखों की संख्या में विश्रवा के पुत्र कुबेर की सेवा करते थे। 'मत्स्य पुराण' में सूत जी ने संपूर्ण सृष्टि के अधिपतियों का वर्णन करते हुए किन्नरों का अधिपति चित्ररथ को बताया है– 'गन्धर्वविद्याधराकिन्नराणामीशं पुनश्चित्ररथचकार।'[55]

जातुधि नामक देवपर्वत के अनेक शृंगों में साधु रहते हैं। जहां पर यक्ष, किन्नर एवं गन्धर्वों के हजारों मंदिर हैं- 'यक्षाणां किंनराणां च गन्धर्वाणां सहस्त्रशः।'[56] ये लोग शिव की लिंग मूर्ति, त्रिनेत्र वाली मूर्ति, अग्निष्टवात (पितरगण जो सूर्य के समान कांति वाले थे) एवं तारापति चंद्रमा की उपासना किया करते हैं- -'ऋषिकिंन्नगन्धर्वाः साक्षात्देवं तमोनुदम्।'[57] जिस प्रकार वृक्ष अपने फूलों से देवताओं की, फलों से पितरों की, छाया से सभी अतिथियों की पूजा करते हैं उसी प्रकार किन्नर भी अपनी ईश्वर उपासना के लिए वृक्षों का सहारा लेते हैं। शीतांत और कुमुञ्ज पर्वतों के बीच एक द्रोणी (घाटी) है। यहां पर साक्षात लक्ष्मी जी का वास है। इस घाटी में सोने के समान पीले-पीले, हरे और पाण्डुर वर्ण के फल लगते हैं। ये

फल सुगन्धित अमृत की भांति स्वादिष्ट और भेरीबाजे के समान बड़े-बड़े हैं। जब ये पक कर धरती पर गिरते हैं तो यह वन प्रांत श्रीवन के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है। इस श्रीवन के फलों का पान गन्धर्व, किन्नर, यक्ष और महानाग करते हैं–'गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षर्महानागैश्च सेवितम्।'[58] दक्षिण दिशा की घाटी में शिशिर और पतंग पर्वतों के बीच एक रमणीय उदुम्बर वन है जहां की भूमि चिकनी है। इसी वन में भगवान कर्दम प्रजापति का रमणीय आश्रम भी है। इसमें मूंगे के समान लाल-लाल पके हुए रसीले और मनोहर फल लगते हैं। यक्ष, गन्धर्व और किन्नर आदि इन फलों को बड़े चाव से खाते हैं– 'ज्वलितं तद्वनं भाति महाकुम्भोपमैः फलैः। सत्सिद्धयक्षगन्धर्वाः किंनरा उरगास्तथा।'[59] ताम्रवर्ण सरोवर के पूर्व किनारे के पास भी समस्त ऋतुओं में फलने वाले आम का वन है। जहां पर सोने के समान पीले-पीले और सुगन्धित घड़े के बराबर रसदार आम लगते हैं। इस आम रस को 'गन्धर्वकिंनरा यक्षा नागा विद्याधरास्तथा। पिबन्त्याम्ररसं तत्र सुस्वादु ह्यमृतोपमम्'[60] बड़े चाव से पीते हैं।

युद्ध में किन्नर लोग भी देवताओं की भांति भूमिका निबाहते थे। देवताओं और तारकासुर के युद्ध में इंद्र के रथ के चारों ओर सारथी, गंधर्व और किन्नर फैले हुए थे। इस युद्ध में तारकासुर की विजय हुई। अपने पुखराज से जड़ित आसन पर बैठकर तारकासुर ने जश्न मनाया, जिसमें गंधर्व एवं किन्नर स्त्रियां भी थीं– 'ततः किन्नरगन्धर्व नागनारीविनिदितैः।'[61] रघुवंश महाकाव्य में भी महाराज रघु सात पर्वत निवासी म्लेच्छ जाति के गिरोहों को युद्ध में पराजित करते हैं। वे किन्नरों द्वारा अपने भुजबल का यशोगान कराते हैं। रावण देवताओं से युद्ध जीतकर समस्त देव, गन्धर्व, किन्नर, लोकपाल, मुनि आदि सिद्धों को अपने राज्य में ले जाता है। दैत्यों के स्वामी शंखचूड़ ने भी समस्त सुर-असुर, गंधर्व और किन्नरों को अपने वश में कर लिया था। किन्नर गंधर्वों और यक्षों की भांति गायन एवं नृत्य कला में प्रवीण थे। इनके कंठ की प्रशंसा युग-युग के मनीषियों ने की है। भगवान विष्णु नारद को संगीत विद्या सिखाते हुए कहते हैं कि गंधर्वों एवं किन्नरों के समूह भी मुझे ही आचार्य मानते हैं–'एते किन्नरसंघ वै मामाचार्यमुपागताः।'[62] गान योग में समस्त गन्धर्व एवं किन्नर नारद मुनि की सहायता करते हैं। नारद मुनि उनके स्नेह की प्रशंसा करते हैं– 'मुनिना सह संयुक्ताः प्रीतियुक्ता भवंति ते।'[63] हिमालय पर्वत पर शिव को प्रसन्न करने के लिए किन्नर एवं उनकी स्त्रियां उत्तम स्वर एवं अनेक रागों में गाते हैं। गंधर्व गण बीन बजाते हैं। स्वर्ग की अप्सराएं नृत्य करने लगती हैं–'वादयन्तोऽतिमधुरं जगुर्गन्धर्वकिन्नराः'।[64] कुमारसंभव में शिव-पार्वती के मिलन के समय हिमालय मानो गाने वाले किन्नरों को तान देने की इच्छा कर रहा हो; ऐसा प्रसंग है– 'उद्गास्यतामिच्छति किन्नराणां तानप्रदायित्वामिवोपगन्तुम्।'[65] मत्स्य पुराण में सूत जी हिमालय पर्वत की खूबसूरती एवं वहां निवास करने वाले मनुष्यों की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह पर्वत कहीं क्रीडा करते हुए विद्याधरों के गणों से सुशोभित, कहीं गंधर्व, अप्सराओं से विभूषित, कहीं कल्प वृक्ष के पुष्पों से सज्जित और कहीं मुख्य किन्नर गणों के गान से गुंजार रहता है। जलंधर राक्षस की मृत्यु की खुशी में समस्त देवांगनाएं नाचने लगती हैं और किन्नरों के साथ मधुर पदों का गान करती हैं- 'कल स्वराः कलपदं किन्नरैः सह सञ्जगुः'।[66] शिवमहापुराण में अन्यत्र भी गंधर्व एवं किन्नरों के गान का वर्णन है। मेघदूत खंडकाव्य में विरही यक्ष मेघ के द्वारा अपनी वियोगविधुरा पत्नी को प्रणय संदेश भिजवाते हैं– 'शब्दायंते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्ण्यमाणाः, संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः'[67] अर्थात् हे मेघ! थोड़ी तेज गर्जना करो जिस प्रकार हवा की तेजी के कारण बाँस मधुर ध्वनि कर रहे हों और एक साथ मिलकर नृत्यगीत में अनुरक्त किन्नरियाँ भगवान शंकर का त्रिपुरविजयगीत गा रही हों।

आज भारतीय संविधान में एक विशेष वर्ग के लोगों (थर्ड जेंडर) के लिए 'किन्नर' शब्द का प्रयोग

किया गया है। एक जाति विशेष जिसे देवयोनि कहकर ग्रंथों में सम्मानित किया गया है। उनकी जीवन शैली एवं अधिकार सभी देवताओं के समान थे। नृत्य एवं गायन कला में प्रवीण इस जाति विशेष को आज एक ऐसे समुदाय के लोगों से जोड़ दिया गया है, जो अपने अधिकारों के लिए उच्चतम न्यायालय से गुजारिश करते हैं। अगर ये लोग देवताओं के साथ निवास करने वाले किन्नर समाज से संबंध रखते हैं, तो इनके साथ ऐसा अन्याय क्यों?

संदर्भ :

1. महाभारत-1. वेदव्यास, अनुवादक-सा. पं. रामनारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम', आदिपर्व (संभव पर्व), अध्याय-12, श्लोक-16, पृ. 276, गीता प्रेस, गोरखपुर सं. 2067.
2. केदारखंड, अनुवादक- डॉ. शिवानंद नौटियाल, अध्याय-11, पृ. 36, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं. 1994
3. द्र. वही पृ. 36
4. द्र. वही पृ. 36
5. द्र. वही पृ. 37, श्लोक-32
6. वाल्मीकि रामायण, अनुवादक- चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा, उत्तरकाण्ड
7. मत्स्य पुराण, टीकाकार-पं. कालीचरण गौड़ एवं पं. बस्ती रामजी, अध्याय-12, श्लोक-10, पृ. 37, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित सं. 2006
8. द्र. वही पृ. 38, श्लोक-16.
9. द्र. वही पृ. 38, श्लोक-16
10. महाभारत-1, आदिपर्व (संभव प्रव), श्लोक-19, अध्याय-12, पृ. 277
11. वाल्मीकि रामायण, अनुवादक-चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा, उत्तरकांड (उत्तरार्ध-10), सर्ग-87, श्लोक-30, पृ. 796.
12. द्र. वही पृ. 801, सर्ग-89, श्लोक-22,
13. महाभारत-2, विराट पर्व (पांडव प्रवेश पर्व), अध्याय-11, पृ. 1033.
14. पद्म पुराण, अनु. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, श्लोक-40, पृ. 240, प्रथम सं. 1969
15. द्र. वही पृ. 249, श्लोक-3
16. महाभारत-3, उद्योग पर्व (अम्बोपाख्यान पर्व), अध्याय-177, श्लोक-14, पृ. 561.
17. द्र. वही पृ. 561, श्लोक-14
18. द्र, वही पृ. 569, श्लोक-66
19. लिंग पुराण-2, श्लोक-1-2, पृ. 122
20. संस्कृत हिन्दी शब्द कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 275, हिंदी राष्ट्र भाषा कोश, संकलनकर्ता-विश्वेश्वर नारायण श्रीवास्तव, देवीदयाल चतुर्वेदी, पृ. 327, वृहत हिन्दी कोश, सं. कालिका प्रसाद राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दी लाल श्रीवास्तव, पृ. 283.
21. अमरकोश, महामहोपाध्याय श्री भट्टोजी दीक्षितात्मज, श्री भानुजी दीक्षित, रामाश्रयी (व्याख्या सुधा) प्रथम कांड, स्वर्ग वर्ग, श्लोक-11, पृ. 8, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी-1, सं. प्रथम-2026.
22. द्र. वही पृ. 8 श्लोक-10
23. हिन्दी विश्व कोश,सं. श्री नगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहापर्व, भाग-4, पृ. 730, बी. आर. प्रकाशन, दिल्ली.
24. किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 10, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग प्रथम सं. 2000.
25. शिवमहापुराण, उमा संहिता, अध्याय-4, श्लोक-11, पृ. 1191.
26. श्री हरिवंश पुराण, तृतीय भविष्य पर्व, अध्याय-23, श्लोक-18, पृ. 916.
27. वायु पुराण, अध्याय-70, श्लोक-64, पृ. 648.
28. श्री विष्णु पुराण, अध्याय-23, अंश-5, श्लोक-35, पृ. 382.
29. श्री हरिवंश पुराण, तृतीय भविष्य पर्व, अध्याय-20, श्लोक-10, पृ. 912.
30. शिवमहापुराण, उमा संहिता, अध्याय-12, श्लोक-63, पृ. 1491.
31. श्री विष्णु पुराण, अध्याय-22, अंश-4, श्लोक-4, 5, पृ. 302.
32. मत्स्य पुराण, अध्याय-5, श्लोक-45, पृ. 20.
33. श्री विष्णु पुराण, अध्याय-1, अंश-3, श्लोक-12, पृ. 169.
34. द्र. वही पृ. 272, श्लोक-2, अंश-4.
35. ब्रह्मपुराण, श्लोक-34, पृ. 399.
36. किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 346.
37. वायु पुराण, अध्याय-33, श्लोक-41, पृ. 256
38. मत्स्य पुराण, अध्याय-120, श्लोक-72, पृ. 364
39. वायु पुराण, अध्याय-33, श्लोक-48, पृ. 257.
40. द्र. वही पृ. 331, अध्याय-46, श्लोक-4.
41. द्र. वही पृ. 331, अध्याय-46, श्लोक-5
42. श्री हरिवंश पुराण, द्वितीय विष्णु पर्व, अध्याय-120, श्लोक-62, पृ. 778.
43. वायु पुराण, अध्याय-41, श्लोक-28, पृ. 298
44. कुमारसंभव, कालिदास, हिन्दी व्याख्याकार श्री पं. प्रद्युम्न पाण्डेय, प्रथम सर्ग, श्लोक-11, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित सं. 2013, पृ.-7.
45. शिवमहा पुराण, सती खंड, अ.-22, श्लोक-61, पृ. 312.
46. मत्स्य पुराण, अध्याय-153, श्लोक-129, पृ. 545.
47. द्र. वही पृ. 362, अध्याय-120, श्लोक-48.
48. वायु पुराण, अध्याय-399, श्लोक-7, पृ. 287.

49. द्र. वही पृ. 292, अध्याय-39, श्लोक-59
50. महाभारत-1, वेदव्यास, अनुवादक-सा. पं. रामनारायण दत्त, सभापर्व (दिग्विजय पर्व), अध्याय-28, पृ. 853.
51. महाभारत-2, द्र. वही पृ. 868, अध्याय-266, वन पर्व (रामोपाख्यान पर्व).
52. अमर कोश, प्रथम कांड. स्वर्ग वर्ग-1, श्लोक-69, पृ. 34
53. द्र. वही पृ. 35.
54. महाभारत-1, वेदव्यास, अनुवादक-सा. पं. रामनारायण दत्त, सभापर्व (लोकपाल सभाख्यान पर्व), अध्याय-8, श्लोक-6, पृ.25.
55. मत्स्य पुराण, अध्याय-8, श्लोक-6, पृ. 25.
56. वायु पुराण, अध्याय-41, श्लोक-67, पृ. 301.
57. द्र. वही पृ. 301, श्लोक-58.
58. द्र. वही पृ. 278, अध्याय-37, श्लोक-13.
59. द्र., वही पृ. 280, अध्याय-38, श्लोक-4, 5
60. द्र. वही पृ. 282.
61. मत्स्य पुराण, अध्याय-152, श्लोक-228, पृ. 535.
62. लिंग पुराण, श्लोक-55, पृ. 162.
63. द्र. वही पृ. 165, श्लोक-70.
64. मत्स्य पुराण, अध्याय-153, श्लोक-493, पृ. 568.
65. कुमारसंभव, कालिदास, हिन्दी व्याख्याकार श्री पं. प्रद्युम्न पाण्डेय, प्रथम सर्ग, श्लोक-8, पृ.-5.
66. शिव महापुराण, रुद्र संहिता, युद्ध खंड, अध्याय-24, श्लोक-55, पृ. 746.
67. मेघदूत, कालिदास, व्याख्याकार-थानेशचंद्र उप्रेती साहित्याचार्य, श्लोक-56, पृ. 124, संस्कृत ग्रंथागार, दिल्ली, प्रथम सं. 2001.

■

द्वारा- रंजना राजदान
14, हरिद्वार रोड,
देहरादून-248001 (उत्तराखंड)
मो. 8791699180

झुट्ठी रपट

इस बार रामधन की सारी फसल ओलावृष्टि की भेंट चढ़ गयी। रामधन भयभीत आंखों से बरसात और ओलों की मार को देखता रहा। बीज, खाद, सिंचाई, गोड़ाई पर लगा सारा पैसा, सारी मेहनत बर्बाद हो गई...।

आढ़ती फसल कटने से भी पहले कर्ज चुकता करने का तकाजा कर गया था। और इधर तबाही के मंजर थे। सरकार ने गिरदावरी करवाई, तो उसके खेत को शामिल नहीं किया। यानी कि मुआवजा भी नहीं मिलेगा। वह पटवारी और सेक्रेटरी को कई बार कह चुका, पर वो लिखे तब ना.. अब वह कर्ज चुकता कहां से करे, घर में तो खाने के भी लाले पड़े हैं.. खेत की मेंड़ पर उकड़ूं बैठा वह सोचता रहा... इस बार बेड़ा कैसे पार होगा? कर्जा देने वाले भी हमारे हालात जानते हैं... वो भी मुंह फेरने लगे हैं... रामधन ने एक बार ऊपर देखा, फिर फौरन ही जमीन की तरफ देखने लगा...

अगली सुबह रामधन खेत किनारे ओंधे मुंह पड़ा मिला। वह मर चुका था। पोस्टमार्टम हुआ। शाम को रिपोर्ट आई कि जहरीला पदार्थ खाने से मौत हुई है। उसकी घरवाली रामरती फूट पड़ी- 'ये रपट झुट्ठी है। इसमें उसकी मजबूरी, परेशानी और कर्जे के दबाव की बात तो बताई ही नहीं। यही जहर तो पीता रहा वह पूरा बरस। थारी ये रपट एकदम झुट्ठी है...।'

बुन्देलखण्ड का एक रोचक इतिहास प्रसंग

अनोखे थे पन्ना के राजा : अमान सिंह

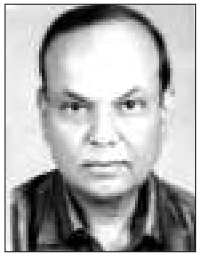

जगदीश किंजल्क

स्वतंत्रता के पूर्व पन्ना एक देशी राज्य था। इसका अतीत अत्यंत गौरवशाली रहा है। आज पन्ना मध्यप्रदेश के अंतर्गत एक जिला है, जो हीरे की खदानों एवं आकर्षक मंदिरों एवं तालाबों के कारण पूरे देश में जाना जाता है। इतिहास में भी पन्ना राज्य का नाम बड़े गौरव के साथ दर्ज है। यह स्वनामधन्य महाराज छत्रसाल की राजधानी था। इसका इतिहास अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। यहां अनेक रणबाकुरे पैदा हुए हैं। महाराजा छत्रसाल के वंश में अमान सिंह एक ऐसे राजा हो गए हैं, जो अपने अनूठे कृत्यों एवं व्यक्तित्व के कारण इतिहास में महत्वपूर्ण हैसियत रखते हैं। हां, दुख इस बात का है कि इतिहासकारों ने राजा अमान सिंह के व्यक्तित्व, उनके कार्यों एवं उनके शासन के विषय में खुलकर कलम नहीं चलाई है। साहित्यकारों ने भी उनके साथ न्याय नहीं किया है। यही कारण है कि उनका व्यक्तित्व अत्यंत महत्वपूर्ण होते हुए भी बहुचर्चित नहीं हो पाया। हां! अजयगढ़ (जिला पन्ना) म.प्र. में जन्में प्रसिद्ध साहित्यकार कवि एवं चित्रकार स्व. अम्बिका प्रसाद दिव्य ने अवश्य राजा अमान सिंह के व्यक्तित्व पर खुलकर कलम चलाई हैं। दिव्य जी द्वारा निर्मित राजा अमान सिंह का रंगीन चित्र उनके महत्वपूर्ण कला ग्रंथ, 'बुंदेलखंड चित्रावली' में है, जिसे मैंने साहित्यिक पत्रिका 'दिव्यालोक' (अंक-13) के मुख पृष्ठ पर प्रकाशित किया है। इस चित्र की गुणवत्ता पर देश के अनेक भागों से प्रशंसा पत्र भी प्राप्त हुए थे।

बुंदेलखंड में यह माना जाता है कि महाराज छत्रसाल ने बावन विवाह किये थे। इन बावन रानियों से अड़सठ पुत्र पैदा हुए थे। इन सब राजकुमारों में सिर्फ हृदयशाह और जगतराज ही होनहार निकले जिन्होंने इतिहास में अपना नाम लिखाया, साथ ही महत्वपूर्ण कार्य भी किए। इतिहास बताता है कि महाराज छत्रसाल का राज्य तीन भागों में बंटा था। पन्ना का विशाल भूभाग हृदयशाह को मिला था। एक भाग बाजीराव पेशवा को दिया गया था। शेष भाग जगतराज के हिस्से में आया था। राजा हृदयशाह के पुत्र थे राजा सभा सिंह। सभा सिंह के पुत्र हुए राजा अमान सिंह और हिन्दूपत।

राजा अमान सिंह का पूरा जीवन, होनी-अनहोनियों एवं विचित्र घटनाओं से भरा पड़ा है, इसी कारण इनका समाज में महत्वपूर्ण स्थान रहा है। राजा अमान सिंह में परस्पर विरोधी गुण थे। वे जितने सहज थे उतने ही गुस्सैल भी। उनकी दानशीलता के अनेक किस्से प्रचलित हैं। मैं यहां उनके जीवन का एक अनूठा किस्सा लिखने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा। बरसात के दिन थे। एक दिन राजा अमान सिंह अपने राजप्रासाद की एक ऊंची छत पर घूम रहे थे। उनके साथ कुछ दरबारी भी थे। इन दरबारियों के

साथ उनके चार राज कवि भी थे। राजा अमान सिंह टहलते टहलते अनायास एक कवि की ओर देखते हुए बोले, 'क्यों राम कवि! मैं इस छत से नीचे गिर पड़ूं तो क्या हो?' रामकवि ने सोचा कि महाराज ने एक समस्या पूर्ति दी है तो उन्होंने तत्काल एक दोहा बना कर महाराज को सुना दिया। दोहा था–

'गिरें आपके शत्रु नृप- जो सिर रहे उठाय,
आप गिरें क्यों, ईश को– जो सिर रहे नवाय।'

राम कवि का दोहा सुनकर राजा अमान सिंह मन ही मन मुस्कराने लगे। थोड़ी देर बाद उन्होंने मल्ल कवि की ओर देखते हुए कहा, 'मल्ल कवि जी, आप भी कुछ कहिये।' मल्ल कवि ने समझा कि महाराज उनकी परीक्षा ले रहे हैं, अतः उन्होंने भी एक दोहा रच डाला और तत्काल बोले–

'धंस नीचे जैहै धरा- जो गिर हौ महाराज,
कछु न बिगरहै आपको- जग कौ होय अकाज।'

मल्ल कवि का दोहा सुनकर महाराज पुनः मुस्कराये फिर उन्होंने नाथ कवि की ओर देखा। इस बीच नाथ कवि ने भी अपना दोहा तैयार कर लिया था। वे तत्काल बोले–

'आप गिरें तो यह धरा- समझ आपको दान,
लैहै अंचल बढ़ा कै- बीचहिं में सुख मान।'

महाराज अमान सिंह चारों कवियों के दोहे सुनकर मन ही मन मुस्कुराते रहे, पर चुप रहे। अनायास वे छत से सड़क की ओर निहारने लगे। एक आदमी सड़क पर तेज कदम बढ़ाता हुआ चला जा रहा था। राजा अमान ने मंत्री से पूछा, यह कौन है जो इतनी तेजी से चला जा रहा है। मंत्री ने उसे पहचान लिया और बोले, 'हुजूर, यह लटोरा नाई है। इतनी तेज चाल उसी की है। इसे ऊपर बुलाओ! महाराज ने मंत्री से कहा। मंत्री ने दरबान से कह कर उसे छत पर बुलवा लिया।

लटोरा नाई को देखकर महाराज अमान सिंह ने उससे पूछा, 'क्यों रे लटोरा! यदि मैं छत से नीचे गिर पड़ूं तो क्या हो?' महाराज! क्या हो, यही कि दहेड़ी सी खोपड़ी फूट जाय प्राण पखेरु उड़ जाय। कुछ कहते बना हो तो महाराज जानें। लटोरा ने कहा। वह अनपढ़ और गंवार था ही। उसने ठक्काठाई उत्तर दे दिया। लटोरा की बात सुनकर सारे उपस्थित दरबारी स्तम्भित रह गये। सोचने लगे अब तो लटोरा गया काम से, इसने महाराज के लिए ऐसा कह दिया। परन्तु महाराज उसकी बात सुनकर हंस दिये और बोले, इसने कही सच्ची बात। मुझे ऐसे ही आदमी की जरूरत है। मैं इसे अपनी सेवा में रखूंगा। और इस तरह लटोरा नाई के भाग्य खुल गये। सभी दरबारी समझ गये कि राजा अमान सिंह को चापलूसी पसन्द नहीं। यह प्रसंग इतिहास में आ गया।

इसी से लगा हुआ एक और प्रसंग इतिहास में उल्लिखित है। उसी छत पर जब चर्चाएं चल रही थीं, तभी उसी मार्ग पर कुछ स्त्रियां एक गीत गाती हुई जा रही थीं। गीत इस प्रकार था–

नन्हीं नन्हीं बुंदियन मेघा बरस गये,
जमी है अखाड़न दूब,
दूबा जो मोरी भैंसन चर लई,
देती हैं गागर भर दूध।
दूधा जो मोरे वीरन पी लओ,
लेंय मुगल सौं जूझ,
जूझ करत मुगलैं ऐसो पछारो,
वाह वाह भई जो खूब...।

यह गीत राजा अमान को बहुत भा गया। चर्चा का विषय बदल गया। उन्हें स्मरण हो आया कि किस तरह उनकी बहिन सुभद्रा, भैंस का ताजा-ताजा दूध अपने हाथ से पिलाया करती थीं। तभी यह शरीर मुगल को पछाड़ने लायक बना था। कैसे उन्होंने एक बार एक पहलवान को अखाड़े में पछाड़ा था...। अपनी बहिन सुभद्रा का स्मरण आते ही उनका प्रेम हिलोरें भरने लगा। उन्हें लगा कि उन्होंने एक अर्से से अपनी बहिन को नहीं बुलाया है। उन्होंने स्वयं अकौड़ी जहां, सुभद्रा का विवाह हुआ था जाकर बहिन को लाने का निर्णय लिया। एक दिन वे अकौड़ी पहुंच गये। अकौड़ी में उनकी बहिन सुभद्रा और बहनोई प्रान सिंह रहते थे। अकौड़ी एक छोटी सी रियासत थी। इसके शासक प्रान सिंह ही थे। वे

बहुत महत्वाकांक्षी थे और अकौड़ी को वे एक बड़ा राज्य बनाने का स्वप्न देख रहे थे। वे अपनी सेना बढ़ाने में लगे हुए थे। अकौड़ी के किले का भी वे विस्तार कर रहे थे।

ठाकुर प्रान सिंह, राजा अमान सिंह को अकौड़ी में देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने राजा अमान की जी भर कर आवभगत की। बहिन सुभद्रा की प्रसन्नता का भी पारावार नहीं था। मनोरंजन के साथ-साथ समय व्यतीत करने के लिए एक दिन संध्या समय ठाकुर प्रान सिंह और महाराज अमान सिंह चौपर खेलने बैठे। खेल के दौरान महाराज अमान सिंह की एक गोट मरने लगी। ठाकुर साहब को इससे बड़ा गौरव प्राप्त होने लगा तो उन्होंने उल्लास से कह दिया, वह मारी। महाराज अमान सिंह को अपने बहनोई ठाकुर प्रान सिंह के ये शब्द अच्छे नहीं लगे। ताव-ताव में उन्होंने भी बोल दिया, 'कभी नहीं।'

ठाकुर प्रान सिंह विनोद पूर्वक कहने लगे, 'कैसे नहीं?' राजा नल के पासे, मैंने गोट मारी और बुन्देले ने बाजी हारी। बहिनोई होने के नाते ठाकुर प्रान सिंह ने यह बात विनोद में ही कही थी परन्तु राजा अमान सिंह को क्रोध आ गया और वे बोल पड़े, 'जिसने मेरी गोट मारी, उसकी मैंने गरदन मारी।' प्रान सिंह ने समझा कि साले साहब भी विनोद में ही यह बात कह रहे हैं सो उन्होंने राजा अमान की गोटी मार दी। बस फिर क्या था? अमान सिंह ने अपनी पराजय कभी स्वीकार नहीं की थी। उनको क्रोध आ गया। वे चुपचाप अकौड़ी की गढ़ी से बाहर आकर अपने डेरा पर आ गये। उन्होंने एक शुतुर-सवार को अपने राज्य, पन्ना भेजा और पन्ना से फौज मंगवाई। ठाकुर प्रान सिंह को लगा कि उनके साले साहब रूठ गये हैं। कुछ दिनों में मान जायेंगे। पर चोट गहरी पड़ी थी। इधर पन्ना से ज्यों ही फौज आई नहीं कि डंके पर चोट पड़ी, और अकौड़ी की गढ़ी को अमान सिंह ने घेर लिया। तोपें चलने लगीं। कई दिन बीत गये पर गढ़ी का दरवाजा न टूटा। ठाकुर प्रानसिंह ने भी अपनी तैयारी कर ली थी। एक रात को गढ़ी की एक ऊंची छत पर नाच करवाया। नर्तकी ने एक ऐसा गीत गाया जिससे राजा अमान सिंह का खून खौल उठा। गीत इस प्रकार था–

सभा प्रान सिंह की लगी,
बुन्देला छत्रसाल की लली,
खनुआ खसौटी के धोखे अकौड़ी से लड़ी,
बहुतक सिर मारी, पर एक न चली...।

इस गीत के बोल सुनकर राजा अमान सिंह ने प्रतिज्ञा की कि जब तक अकौड़ी की गढ़ी का दरवाजा नहीं टूटेगा तब तक खाना न खाऊंगा। सवेरा होते ही घमासन युद्ध छिड़ गया। गढ़ी के फाटक में 'हाथी-चिग्घाड़-कीले' लगे हुए थे। अतः हाथी फाटक को तोड़ नहीं पा रहा था। जैसे ही हाथी फाटक पर सिर से धक्का मारता, कीले उसके माथे पर घुस जाते तो वह पीछे हट जाता।

बुंदेलखंड के पानी में वफादारी और राजभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। राजा के कर्मचारी, उनकी फौज राजा की आन बान शान पर अपने प्राणों को क्षण में न्योछावर कर देती थी। जब हाथी दरवाजा तोड़ने के लिए धक्का मार रहा था तभी एक वफादार, हिम्मती सैनिक हाथी की पीठ से उछल कर कीलों से चिपट गया। फिर वह महावत से बोला, 'लो अब हाथी से धक्का लगवाओ।' महावत ने फिर हाथी से धक्का लगवाया। इस बार फाटक धड़ाम से नीचे गिर गया। वफादार सैनिक की तत्काल मृत्यु हो गई। राजा अमान सिंह की फौज अकौड़ी की गढ़ी में प्रवेश कर गई।

गढ़ी के अंदर जैसे ही राजा अमान सिंह ने प्रवेश किया वे ठाकुर प्रान सिंह पर तलवार लेकर झपटे। इसी समय उनकी बहिन सुभद्रा सामने आ गई और रोती हुई बोलीं, 'भैया मैं भीख मांगती हूं, मेरे माथे का सिंदूर न पौंछो।' राजा अमान सिंह क्रोध में पागल हो रहे थे। उन्होंने अपनी बहिन की एक न सुनी। साले बहिनोई की तलवारें टकराने लगीं। अंत में ठाकुर प्रान सिंह मारे गये। राजा अमान सिंह ने प्रान सिंह का सिर काट कर बहिन की ओर फेंका और बोले, ले यह है भीख। क्षत्राणी होकर भीख मांगती थी...। इस तरह राजा अमान

सिंह जरा सी बात पर अपने बहनोई की हत्या करके और अकौड़ी को तबाह कर के वापस पन्ना आ गये।

इतिहास में एक प्रसंग और काफी चर्चित है। अकौड़ी की छत पर जिस नर्तकी ने गीत गाया था, वह राजा अमान सिंह की नजरों में चढ़ गई थी। नर्तकी का नाम सुभान था। अमान सिंह ने उस नर्तकी को अकौड़ी से पकड़ बुलवाया। वह अत्यंत सुन्दर थी। हर तरह से रूपवती। जब राजा अमान सिंह के दरबारी कवि बोधा ने उसे देखा तो उस पर आसक्त हो। उसे देख कर उन्होंने एक दोहा कहा–

'गई अकौड़ी की अकड़, उड़े प्रान के प्राना,
बाढ़यो मान अमान कौ, आई घरै सुभान।'

इसी सुन्दर नर्तकी के प्रेम पाश में कवि बोधा फँस गये। इसके वियोग में ही उन्होंने 'इश्कनामा' लिखा था। यह भी ऐतिहासिक तथ्य है कि जब कवि बोधा ने अपना 'इश्कनामा' राजा अमान सिंह को सुनाया तो वे प्रसन्न हो गये थे। उन्होंने उपहार स्वरूप सुभान को बोधा को दे दिया। राजा अमान की उदारता का यह प्रसंग इतिहास की महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है। उपन्यासकार एवं चित्रकार स्व. अम्बिका प्रसाद दिव्य के चर्चित कला ग्रंथ 'बुन्देलखण्ड चित्रावली' में दिव्यजी द्वारा निर्मित राजा अमान सिंह, नर्तकी सुभान और कवि बोधा के चित्र संकलित हैं।

राजा अमान सिंह के जीवन का एक और रोचक प्रसंग इतिहास में चर्चित है। एक बार एक सिकलीगर की औरत राजा अमान सिंह को कुछ तलवारें दिखाने लाई। महाराज ने एक तलवार ली और उसकी धार की परीक्षा लेने को एक पत्थर पर चलाने के लिए खींची। ज्योंही महाराज ने तलवार ऊपर उठाई कि वह ललकारती हुई बोली, 'खबरदार महाराज, हाथ न चलाना।' अमान सिंह ने ठिठकते हुए पूछा- क्यों? सिकलीगरन बोली, 'महाराज यह हाथ शत्रुओं पर चलाने के लिए है या पत्थर पर?' उसकी बात सुनते ही महाराज प्रसन्न हो गये और बोले, 'ठीक कहती हो मौसी, जा मेरी रानी के सारे जेवर उतरवा लेजा। औरतें ऐसी ही निर्भय होनी चाहिए।' वह सिकलीगरन रानी के सारे जेवर उतरवा कर, प्रसन्नता पूर्वक घर को चली गई।

इतिहास में यह भी उल्लेख मिलता है कि महाराज अमान सिंह प्रतिवर्ष विजयादशमी के दिन किसी एक व्यक्ति को अपने महल की सबसे ऊंची छत से कुदवाया करते थे। कूदने वाले व्यक्ति का चयन पहले से कर लिया जाता था। एक बार एक बुढ़िया के लड़के की बारी आई। बुढ़िया का एक मात्र पुत्र था वह। उसके परिवार में और कोई व्यक्ति नहीं था। वह रुदन करने लगी। सुयोग से उसी समय एक पंडा तीर्थ यात्रा से लौटता हुआ उस बुढ़िया के घर आया। वह पूछने लगा, 'माता, क्यों रो रही हो?' मेरे एक ही बेटा है, कल यह महल की छत से कुदवाया जायेगा, महाराज की आज्ञा है। इसके प्राण पखेरु उड़ जायेंगे। फिर मैं क्या करुंगी? बुढ़िया ने रोते हुए कहा। माता तू बिल्कुल चिन्ता न कर। कल देखा जायेगा, उस पंडा ने कहा।

दूसरे दिन महाराज अमान सिंह अपने दरबारियों के साथ महल की छत पर खड़े उस आदमी की प्रतीक्षा कर रहे थे जिसे छत से कुदाया जाना था। तभी वह पंडा उस बुढ़िया को पीठ पर लादे हुए पहुंचा और बोला, 'अन्नदाता। आज इस बुढ़िया को कूदने की अनुमति दीजिए।' जीर्ण शीर्ण बुढ़िया को देखकर राजा अमान सिंह बोले, 'यह मर न जायेगी?' पंडा ने तत्काल उत्तर दिया- महाराज को हत्या से काम, बुड्ढा मरे या जवान। पंडा की बात सुनकर महाराज ने आश्चर्य से पूछा, क्या यहां से कूदकर आदमी मर जाता है? 'और नहीं तो क्या होता है महाराज?' पंडा ने कहा। उस दिन से महाराज ने वह प्रथा बन्द करा दी। महाराज अमान सिंह के सम्पूर्ण जीवन में इस प्रकार की सैकड़ों घटनाएं हैं जो उल्लेखनीय हैं। यह प्रसंग भी इतिहास में दर्ज है। एक बार रात के समय महाराज अमान सिंह अपने दरबार में बैठे हुए थे। उसी समय कुछ गीदड़ों की 'हुआ हुआ' सुनाई पड़ी तो महाराज ने पूछा, 'ये क्यों रो रहे हैं?' किसी दरबारी ने कहा अन्नदाता। ठंड बहुत पड़ रही है। ये ठण्ड के मारे रो रहे हैं। दरबारी की बात सुनकर महाराज ने उसी क्षण आदेश

दिया, इन्हें रजाई गद्दे बनवा दो। बस फिर क्या था? सैकड़ों रजाई गद्दे बनवा दिये गये। कुछ समय बाद महाराज पुनः दरबार में बैठे तो उन्हें सियारों की 'हुआ हुआ' सुनाई पड़ी तो उन्होंने उसी दरबारी से पूछा, अब ये सियार क्यों रो रहे हैं? इन्हें रजाई गद्दे तो बनवा दिये थे?

उस दरबारी ने तत्काल उत्तर दिया, महाराज। ये रो नहीं रहे। रजाई गद्दे पाकर प्रसन्न हो रहे हैं और आपकी जय-जयकार कर रहे हैं।

इतिहास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रसंग मिलता है। इसे दिव्य जी ने बुन्देलखंड चित्रावली में भी लिखा है। महाराज अमान सिंह के बड़े भाई हिन्दुपत इन्हें पागल समझते थे। उन्होंने षडयंत्र करके राजा अमान की हत्या करा दी और स्वयं राजा बन गया। हिन्दुपत का यह दुष्कृत्य राज्य में किसी को पसन्द न आया। राजा अमान सिंह के दरबार के चारों कवियों को राजा अमान की हत्या का दुख हुआ, चारों कवियों ने राजा अमान की हत्या पर हिन्दुपत की भर्त्सना करते हुए भरे दरबार में एक-एक छन्द सुनाया। चारों कवियों के छन्द इतिहास की धरोहर ही नहीं साहित्य संसार की भी धरोहर हैं। दरबार में सबसे पहले नाथ कवि उठे और उन्होंने अपना छन्द पढ़ा जो इस प्रकार था–

'सूरज कौ सत खोयो, व्रत खोयो बीरन कौ,
कल कौ महेन्द्र खौयो, मेड़ फोरी दान की।
जस कौ समुद्र फौरयो, गुण को जहाज बोरयो,
कामना कौ कल्प तोरयो, आस थी जहान की।
ऐसी किस्मत विचारौ, सन्तन कौ संगी मारो,
बैरिन कौ शाल टारो, घटी बखान की।
नाथ कवि कहै तू, अनाथ भयो हिन्दुपत,
मार कै अमाने कान टोटी हिन्दुवान की।

इसके पश्चात् मल्ल कवि आगे आये। उन्होंने अपना छन्द पढ़ा-

आज महादीनन कौ-सूखगौ दया कौ सिन्धु,
आज ही गरीबन कौ-गाथ सब लुटि गौ।
आज द्विज राजन सकल अकाज भयो,
आज महाराजन को धीरज सौ छुटि गौ।
मल्ल कहे आज सब-मंगल अनाथ भये,
आज ही अनाथन को-कर्म सौ फटि गौ।
पन्ना अमान सुरलोक कौ अमान गयो,
आज कवि जनन को कल्पतरू टूटि गौ।

मल्ल के बाद राम कवि ने अपना छन्द पढ़ा–

बाजत नगारे अन्यारे ये बुन्देलन के,
आरती उतारी त्यों रम्भागीत गावतीं।
शिव छोड़ आसन गुविन्द छोड़ गरूडासन,
धये सुन बैकुंठ वंका की अवावती,
दारिद विहंड कहा मंड सभा सिंहन की,
याचक निहाल जिन्हें-कोटन की पावती।
राम कवि कहें कछु-इन्द्र के कुताई भई,
तातें दान देन गये– अमान अमरावती।'

कवि बोधा ने भी अपना छंद सुनाया–

कौन अपराधी कामधेनु को कियो है घाव,
कौन अपराधी पुण्य पुरवा उजारी है।
कौन अपराधी शोभा मेरी दरबार हू की,
कौन अपराधी कल्पवृक्ष तोर डारो है।
बोधा कवि कहे, फोर डारयो सुधा कौ तड़ाग,
रम्मत मरम्मत अशोक बन जारो है।
कौन अपराधी तोय मारयो है अमान सिंह,
भिक्षुक गरीबन पै दुर्भिक्ष काल पारो है।'

चारों कवियों के छन्द सुनकर हिन्दूपत आग बबूला हो गया और चिल्ला कर बोला, 'अमान को तुमने मारा है तुम ने, इसके पूर्व कि वह तलवार से उन पर आक्रमण करता, चारों कवियों ने आत्मघात करके अपने प्राण त्याग दिये।

बुंदेलखण्ड में राजा अमान सिंह की लोकप्रियता इस बात से भी पता चलती है कि आज भी यहां के लोग कहते हैं– अमान तेरौ नाम लै लै रोती वन की चिरैयां।

■

- संपादक-दिव्यालोक,
साहित्य सदन,
145-ए, सांईनाथ नगर, सी-सेक्टर,
कोलार रोड, भोपाल (म.प्र.)
मो. 9977782777

हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा का सम्मान देने वाले पहले राष्ट्राध्यक्ष : नेताजी सुभाषचंद्र बोस

डॉ. अमरनाथ

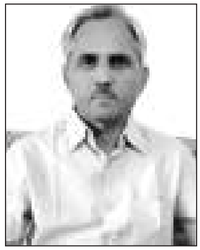

ओडिशा के कटक में 23 जनवरी 1897 को जन्मे, कटक और कलकत्ता में पले-बढ़े, पिता की इच्छापूर्ति के लिए मात्र 23 वर्ष की आयु में आईसीएस पास करने वाले किन्तु अंग्रेजों की चाकरी करने को तैयार न होने के कारण उससे त्यागपत्र देने वाले, आजादी के लिए लड़ते हुए ग्यारह बार जेल जाने वाले, जेल में रहते हुए चुनाव लड़कर 1930 में कलकत्ता का महापौर चुने जाने वाले, भरी जवानी में तपेदिक से बीमार होने के कारण इलाज के लिए यूरोप जाने और बीमारी की अवस्था में ही ‘ इंडियन स्ट्रगल, 1920-1942’ नामक दो खंडों की मशहूर पुस्तक लिखने वाले, वियना में ऑस्ट्रियाई युवती एमिली शेंकल से प्रेम, बाद में विवाह और एक बेटी (अनीता बोस) को जन्म देने वाले, 1936 में भारत लौटने पर गिरफ्तार होने और एक साल बाद रिहा होने के बाद बहुमत से कांग्रेस का अध्यक्ष चुने जाने वाले, किन्तु गाँधी जी की इच्छा का ध्यान रखते हुए 16 मार्च 1939 को अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने वाले, गाँधी जी तथा काँग्रेस की नीतियों से असंतुष्ट होकर 3 मई 1939 को फॉरवर्ड ब्लॉक नाम से स्वतंत्र पार्टी का गठन करने वाले, घर में नजरबंदी के दौरान 26 जनवरी 1941 को पुलिस को चकमा देते हुए जियाउद्दीन के नाम से छद्मवेश में फरार होने और काबुल होते हुए मास्को और फिर बर्लिन पहुँचकर ‘आजाद हिन्द रेडियो’ स्थापित करने वाले, हिटलर से मिलने के बाद उससे सहयोग का आश्वासन न मिलने पर जर्मन और जापानी पनडुब्बियों पर सवार होते हुए मई में टोकियो पहुँच कर जापानी प्रधानमंत्री हिदेकी तोजो से मिलने और जापान की संसद को संबोधित करने वाले, 5 जुलाई 1943 को सिंगापुर के टाउन हाल के सामने आजाद हिन्द फौज के सुप्रीम कमांडर के रूप में सेना को संबोधित करते हुए ‘दिल्ली चलो’ का आह्वान करने वाले, ‘जय हिन्द’, तथा ‘तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा’ जैसे अमर नारे देने वाले, आजाद हिन्द फौज और जापानी सेना के साथ मिलकर दुनिया के सबसे शक्तिशाली साम्राज्य के खिलाफ युद्ध का उद्घोष करने वाले, 21 अक्टूबर 1943 को सिंगापुर में आरिजी- हुकूमते- आजाद हिन्द (स्वाधीन भारत की अंतरिम सरकार) का गठन करने वाले, अपना ध्वज, अपना बैंक, अपनी मुद्रा, अपना डाक टिकट, अपनी गुप्तचर सेवा सहित शासन का पूरा तंत्र विकसित करने वाले, अपनी आजाद हिन्द सरकार के लिए जर्मनी, जापान, फिलीपीन्स, कोरिया, चीन, इटली, बर्मा, मान्चुको तथा आयरलैंड से मान्यता प्राप्त करने वाले, अंडमान तथा निकोबार द्वीप समूह में 8 नवंबर 1943 को तिरंगा फहराने वाले, महिला फौजियों की ‘रानी झाँसी रेजीमेंट’ के साथ 85000 सैनिकों की

विशाल पल्टन तैयार करने वाले, 4 अप्रैल 1944 को अंग्रेजों पर आक्रमण करके 22 जून 1944 तक इंफाल और कोहिमा में लगातार युद्ध करने वाले, 6 जुलाई 1944 को 'आजाद हिन्द रेडियो' पर अपने भाषण के माध्यम से गाँधी जी को सबसे पहले 'राष्ट्रपिता' कहकर संबोधित करने वाले और उनसे आशीर्वाद और शुभकामनाएँ माँगने वाले और अंततः 18 अगस्त 1945 को एक कथित विमान दुर्घटना में सदा-सदा के लिए दुनिया को अलविदा कहने वाले नेताजी सुभाषचंद्र बोस यदि आज भी देश के करोड़ों लोगों के दिलों पर राज करते हैं तो यह स्वाभाविक ही है।

यदि उनके द्वारा किए गए कार्यों के प्रमाण न होते तो विश्वास करना कठिन होता कि कोई व्यक्ति अपनी 48 वर्ष की अल्प आयु में इतना सारा काम भी कर सकता है।

हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा का सम्मान देने वाले पहले राष्ट्राध्यक्ष नेताजी सुभाषचंद्र बोस ही थे। वैसे तो उन्होंने हिन्दी या हिन्दुस्तानी के लिए कभी कोई आन्दोलन नहीं किया किन्तु अपने अनुभवजन्य सहज ज्ञान से उन्होंने भली-भाँति समझ लिया था कि आजाद भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी ही हो सकती है। इसीलिए उन्होंने आजाद हिन्द सरकार की राष्ट्रभाषा 'हिन्दुस्तानी' को चुना. 'जय हिन्द' नारा दिया और रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा रचित 'जन गण मन' को अपना राष्ट्रगान यानी, 'कौमी तराना' घोषित किया किन्तु उसे नए सिरे से 'शुभ सुख चैन की बरखा बरसे भारत भाग्य है जागा' के रूप में हिन्दुस्तानी में लिखवाया। उल्लेखनीय है कि गाँधी जी भी इसी हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे।

सुभाषचंद्र बोस ने हिन्दी की कोई औपचारिक शिक्षा नहीं ली थी। हिन्दी क्षेत्र में काम करने का उन्हें कोई अनुभव भी नहीं था। किन्तु अपने सहज ज्ञान के बलपर उन्होंने समझ लिया था कि आजाद भारत की राष्ट्रभाषा बनने की योग्यता एकमात्र हिन्दुस्तानी में ही है। उन्होंने 1929 ई. में कहा था, 'प्रान्तीय ईर्ष्या-द्वेष को दूर करने में जितनी सहायता इस हिंदी प्रचार से मिलेगी, उतनी दूसरी किसी चीज़ से नहीं मिल सकती। अपनी प्रान्तीय भाषाओं की भरपूर उन्नति कीजिए, उसमें कोई बाधा नहीं डालना चाहता और न हम किसी की बाधा को सहन ही कर सकते हैं, पर सारे प्रान्तों की सार्वजनिक भाषा का पद हिंदी या हिन्दुस्तानी को ही मिला है। इसीलिए कांग्रेस का अध्यक्ष चुने जाने के समय उन्होंने आग्रह किया था कि, 'यदि देश में जनता के साथ राजनीति करनी है तो उसका माध्यम हिन्दी ही हो सकती है। बंगाल के बाहर मैं जनता में जाउँ तो किस भाषा में बोलूँ ? इसलिए काँग्रेस का सभापति बनकर मैं हिन्दी खूब अच्छी तरह न जानूँ तो काम नहीं चलेगा। मुझे एक व्यक्ति दीजिए, जो मेरे साथ रहे और मेरा हिन्दी का सारा काम कर दे। इसके साथ ही जब मैं चाहूँ और समय मिले तब मैं उससे हिन्दी सीखता रहूँ।'

इसके बाद श्री लक्ष्मीनारायण तिवारी को, जो निष्ठावान कांग्रेसी थे और हिन्दी के अच्छे जानकार थे, सुभाषचंद्र बोस के साथ रखा गया था। हरिपुरा कांग्रेस में तथा सभापति के दौरों के समय वह बराबर नेताजी के साथ रहते थे। नेताजी ने बड़ी लगन से हिन्दी सीखी और बहुत अच्छी हिन्दी लिखने पढ़ने और बोलने लगे। आजाद हिन्द फौज का काम और सुभाष बाबू के वक्तव्य अमूमन हिन्दी में ही होते थे। वे भली भाँति जानते थे कि जिस देश के पास अपनी राष्ट्रभाषा नहीं होती, वह खड़ा नहीं रह सकता।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान आज़ाद हिन्द फौज ने जापानी सेना के सहयोग से जब ब्रिटिश सेना पर आक्रमण किया तो अपनी फौज को प्रेरित करने के लिए उन्होंने ' दिल्ली चलो' का नारा दिया था। उन्होंने अंग्रेजों से अंडमान और निकोबार द्वीप जीत लिये और उन्होंने इन द्वीपों को 'शहीद द्वीप' और 'स्वराज द्वीप' का नया नाम दिया था।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस के इस हिन्दी प्रेम का व्यापक असर देश की भाषा-नीति पर पड़ा और हिन्दी को निर्विवाद रूप से आजाद भारत की राजभाषा बनने में सफलता हासिल हुई। महात्मा गाँधी की तरह

नेताजी भी हिन्दी की जगह हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखना चाहते थे। जैसा कि ऊपर कहा गया है उन्होंने अपनी आजाद हिन्द सरकार की राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी को घोषित किया था। यदि गाँधी और सुभाष की भाषा-नीति का अनुपालन करते हुए आजादी के बाद हमारे नेताओं ने हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाया होता तो भारत की भाषा समस्या का बहुत कुछ समाधान हो गया होता। यद्यपि 15 अगस्त 1947 को पं. नेहरू ने भी लाल किले से अपने पहले भाषण का समापन 'जय हिन्द' से करते हुए अपना मनोभाव व्यक्त कर दिया था। किन्तु खेद का विषय है कि संविधान निर्माण के समय भारत की राष्ट्रभाषा पर जब बहस हो रही थी तब न तो गाँधी जी जीवित थे और न नेता जी। देश का धर्म-आधारित बँटवारा भी हो चुका था। ऐसी दशा में हिन्दुस्तानी की जगह हिन्दी को राजभाषा बनाने वालों का पलड़ा भारी हो गया और हिन्दी भारत की राजभाषा घोषित हो गई और वह भी केवल कागजों पर. व्यवहार में अंग्रेजी यथावत चलती रही।

खेद है, आजादी के लगभग पचहत्तर साल बीत जाने के बाद आज भारत की भ्रामक भाषा-नीति या नीति विहीन भाषा नीति के चलते देश को एक सूत्र में जोड़ने वाली गाँधी-सुभाष की वह हिन्दुस्तानी इतिहास में कहीं खो गई, लोक की सहज हिन्दी कृत्रिम राजभाषा की चक्की में पिस गई, कुछ शुद्धतावादियों के पाण्डित्य के बोझ तले सिमट गई और बची-खुची आंग्ल भाषा की आहार बन रही है। कभी 'हिन्दी-हिन्दू-हिन्दूस्तान' का नारा लगाने वाली तथाकथित राष्ट्रवादी सरकार इसे सिर्फ अशिक्षितों की भाषा बना देने पर आमादा हैं।

बहरहाल, नेताजी के प्रताप का ही असर है कि आजाद हिन्द फौज द्वारा अपनाया गया रामसिंह ठाकुर का निम्नलिखित गीत आज भी भारतीय सेना के प्रयाण गीत के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

क़दम-क़दम बढ़ाए जा
खुशी के गीत गाए जा
यह जिंदगी है कौम की
तू कौम पे लुटाए जा।
तू शेरे हिन्द आगे बढ़
मरने से फिर भी तू न डर
उड़ा के दुश्मनों का सर
जोशे-वतन बढ़ाए जा।
क़दम-क़दम...

तेरी हिम्मत बढ़ती रहे
खुदा तेरी सुनता रहे
जो सामने तेरे अड़े
तो खाक में मिलाए जा।
क़दम-क़दम...

चलो देहली पुकार के
क़ौमी निशाँ सँभाल के
लाल किले पे गाड़ के
लहराए जा, लहराए जा।
क़दम-क़दम...

■

ईई-164/402, सेक्टर-2,
साल्टलेक, कोलकाता-700091
ई-मेलः amarnath.cu@gmail.com
मो.: 9433009898

मूर्खता सदा कष्टदायक ही होती है। इसी तरह जवानी से भी कभी सुख की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इन दोनों से भी अधिक कष्टदायक होता है किसी दूसरे के घर में निवास करना और किसी पर आश्रित होना।

-चाणक्य

Quantum Physics and Destiny : Can We Change Destiny Using Quantum Physics?

Madhubabu Prakhya

1. Introduction

Is life pre-determined? Are events destined? If life is random then how can you know or change destiny? Can mankind one day change its destiny using Quantum Physics? It seems all incidents in life are not at all random and they are patterned by some unknown force, as per Philosophy of many religions and spiritual beliefs. The great mystery is whether our lives are predetermined or self-made from will or it's a combination of the two. Can one can change his or her destiny by manipulating events or may be travel through desired parallel universe through a meditation, practice of powerful faith or other will power exercise, are the questions that make conclusions of the miniature quantum world brought to mega-picture of grand Human life. In Eastern mysticism, left unattended, life seems to follow the tracks of a pre-determined rigid groove called 'Destiny' with the results of 'Karma' influencing us.

2. What is Destiny?

Destiny is defined as, the events that will necessarily happen to a particular person or thing in the future. We measure or predict events using our experience or take help of computers to make forecasting of future occurrences. Weather predictions, stock market forecasts, zodiac based astrology readings all these are examples of such efforts. It is obvious we cannot predict all events accurately all the time. The nature has a built-in randomness that impacts calculations. What we call 'Probability' becomes significant factor in even understanding any of these events. At microscopic world of particles this is even more obvious and powerful. Most important calculations of Quantum Physics are talked in probabilities in general.

3. What is Quantum World Destiny?

Quantum Physics opened discussions to other dimensions and parallel universes. While theories and lab experiments show possibilities of such existence, they bring interesting questions too. Thanks to Quantum Physics it opened our eyes to the reality, the true fundamental re-

ality. It says 'Reality' is not what we think it is, and many rules and logic we use for our macro world do not apply to micro world. For example, you can throw a stone and calculate its trajectory and get measurement of its speed and position in classical physics. The same cannot be done in particle world. The statement in quantum mechanics, by Werner Heisenberg, that it is impossible to measure two properties of a quantum object, such as its position and momentum (or energy and time), simultaneously with infinite precision. There goes our accuracy of prediction. Forget about future location of a particle, the measurement of all the present parameters itself is uncertain and impossible. But we, as common folks may not need to measure these things for day to day life yet there is an amazing world of particle and behavior of objects out there which we miss if we do not know about it. One exciting example is entanglement.

The small particles which are partying are all over the place, around you, in you and make even what you call yourself you. Starting to see what comes next is the promise of destiny. This is accomplished by us working on experience. We extend logic to assess future. In the context of this discussion let us consider only the logical path of pre-determined life flow. Life flow is created by events in life which are incidents. These incidents joined together giving us an experience of events occurring. We have placed our consciousness at the center of this experience and call it living. Events are occurring in and around with or without a single personal consciousness experiencing it. The flower you are looking at has already grown from a seed so that you are able to see it today. An important component of experience of consciousness is time. Events happen through time and we get the end results of passing of time. You are. here today because you went through time of your age. We plan our future based on the time flow we look forward to.

Due to the nature of conclusions and findings we are getting in Quantum Physics we are now becoming aware of the small world special effects that defy logic of day to day life. Our limitation of senses and devices restrict us from precisely knowing or evaluating these micro particle behaviors and also existence of multi-dimensional effects. Concepts like parallel universes have immense bearing to our life if or if not they are functioning certain way. When we first heard about it most of us wondered is it true that there is another me or many more 'me's passing through different dimensions in parallel to this universe. We had no way of knowing because we cannot talk to ourselves in other universes to clarify, like it happens in some Hollywood movies. Fiction, philosophy and physics are now looking further what it holds. Many unknowns puzzle us all.

While passing through these parallel universes am I passing through a, particular universe because of the thought I had or some unknown for of my consciousness determined I should pass through that particular universe? Is my consciousness a factor that made selection of a particular event chain that is branching out into trillion ways every tiny fraction of time? Or alternatively, there are parallel universes that are not so similar but exist in their own dimensions with or

without particles jumping between them freely? Is my consciousness working as a vehicle flying between these states creating universe of my experience manifested or selected? Is world manifested or selected? How did it exist before and actually exists now? We are finding answers and researching to understand fundamental behavior consciousness in multi-dimensional space.

4. Observation and Observer

The role of an observer seems to be very important ever since Quantum Physics opened discussions about consciousness. There are limitations to the observer, as we are limited by our abilities and senses. It is quite possible that we are too much conscious in limited and localized space and time, due to pre-programming of millions of years of evolution and as a result cannot really evaluate precisely what is happening to our own self. It may be useful to study how animals, especially monkeys which possess a consciousness and see how they function. Consciousness of the animals may reveal secrets of the operating methods of the consciousness itself. Monkeys interestingly stand at one step before humans. Recent study on baboons' sounds revealed how speaking vowels. What are choices of a monkey and how its destiny is manifested? This may give a unique and more primitive insight into life. In philosophy they say mind is a monkey. Let us for a moment take it literally, for fun metaphorically. Is it possible for mind to be jumping from one branch of one universe to the other branch on the other universe and traveling in between. Finally when a monkey sleeps its sleeping on one tree and wakes up on it. When it wakes up it sees same monkey it saw night before, may be called a girlfriend monkey. Is it because these two monkeys saw each other night before and existed on the same branch and so lived in the same dimensional world. So the consciousness of the monkeys is connected to the universe they live and don't cut off abruptly. In movies events jump and we need to fill the gaps. Real life is not like that and it flows from one to the other and fully experienced in first person.

A monkey is on a tree and on a branch. It saw a fruit on the other branch on the same tree or next tree. In its mind it developed a desire, which is simulation of having that fruit. So it jumped to that branch. So its consciousness worked its way translating from idea to action. Actions were lead by ideas or images that are connected to the consciousness. Is our travel of parallel universes similar? If so we are picking fruits we want and jumping between trees and branches of different worlds based on our thoughts. That occurrence of events happening, is it because we are going into the universe we chose based on the formulations of our consciousness? Our destiny, which is which fruit and which tree depending on our pull of the desire that sprang off the inner qonsciousness that gave that result? What if there are no fruits visible to monkey and its hungry? The monkey then sees simulation of the fulfillment of the hunger in its mind and jumps to more newer branches and trees till it finds a fruit. Its consciousness knew what it needs and searched for its manifestation. This time the object of consciousness is not real, but a simulated image formed in its brain as food and had an idea what to look for.

What if we want fruits? Fruits of our efforts and those are not visible. Can our consciousness be driven to make it appear or connect us to that universe which materializes those fruits? Is it the reason we worship Gods so that we can manifest those qualities, because always our fruits are not actual fruits. We want fruits of different kind, fame and reputation, or become a great father, husband, teacher, scientist, and inventor and so on. We meditate upon those deities who may be nothing but the bundle of attributes or fruits we desire. Meditation on those qualities should connect our inner consciousness, aligned and tuned to materialization of those events that make our needs fulfilled. Is not this the logic whole spiritualism is built upon? There is entire system of Yoga called Patanjali Yoga Sutras built upon this basic principle.

There is something about Nature which is holding lot more secrets than we can imagine. As secretive as mysterious as it can be, it is still open and right in front of your eyes. If you cannot interpret you cannot understand it. If you misinterpret you also miss completely. Let us transcend the monkey example and go really subtle level of understanding Nature. Let us just take for example human eye. It is designed in such a way that it can view things. It is designed to view and it has ingredients including lens and a sophisticated system to capture and pass it for analysis and action. Human mind is designed as this complex machine that can actually process these manifestations. We are equipped ourselves to experience this universe. Same with animals they too are sufficiently instrumented to handle their life's purpose. Darwin's selection of species mentions subtly that there is destiny and Nature selects and at a broad scale species are chosen for survival. Genetically living beings pass this secret sauce of survival generations after generations and make their own class lead the race of life, competing against life and death. They are fulfilling the promise of destiny and altering an alternative destiny that can destroy them or wipe them out completely.

Nature itself is running these algorithms of hidden intelligence that improves and also clears inferior attributes from the universe for embracing change and betterment. Iterations of time come and go where this empty space acts upon to create life, create rules, run the world and balnace it or delete it. We do not know yet full play of this game. By the time we get it time is up and another monkey has to pursue it. We are not God Hanuman who can live forever and actually interpret this universe. Space travel through this three dimensional world is fascinating in itself using all the vehicles we have. Time travel will offer more exciting possibility into the future of the world. We with ability to glimpse the future, can start working on the scientifically understandable destiny of our life. So far efforts are made more in the field of spiritual reading of destiny.

5. Phenomenon— Consciousness, Entanglement, Particle Duality and Probability

There is so much science there which we understood how to change destiny and karma. Methods and devices to understand this have been created using Astrology, Palmistry, and Numerology and so on. Remedies to alter destiny have been proposed through many reli-

gions and spiritual practices — we want to refer it as Spiritual destiny. Scientific destiny is a word we are using here to describe the logically known and calculable pattern of events. More authoritative and measurable, mankind has not ventured much into that realm but will soon do that we are confident with the advancements we are making each day. That brings us to the interesting topic of Particle Destiny. We wanted to know how particles behave using double slit experiment. We cannot logically predict particle destiny, instead it changed our destiny. It even changes behavior based on our observations. When we observed it acted one way and differently when we did not from the famous double slit experiment. What an amazing consciousness these particles have! It reminds me a fact that was established in Kolkata, India long ago. Scientist Sir Jagadish Chandra Bose told us already metals and non-living matter also reacts. Can we conclude there is consciousness manifested in much bigger picture of the world than ourselves? Animals, Plants also have life and they know what is happening. That brings us to a totally new realm of Physics. May be we need it to be called Quantum Consciousness Physics.

Since time varies as we move across the universe, time itself is an entity mankind can conquer one day. Time travel possiblility opens up new realms of understanding and altering Scientific Destiny. If God exists, he is super consciousness and should be above Time Frame. Since He is above Time, he shall have ability to alter destiny because. He can play with the sequence of it. He can alter events from one to another, anyone who can raise above Time would be super human. We started noticing such possibilities of Time manipulation.

Dual nature of particles is well known. For example photons, the light particle behave like particles and also waves. The famous double slit experiment revealed that when we observe the particles are behaving as particles and when we do not observe they are acting as waves, according to one interpretation. This brought a whole new series of discussions and interpretations including those of famur scientists like Einstein.

If we step back for a moment and take a look at this experiment and its results, it is as if the fundamental particles are by nature pervasive like waves and when observations occur they restore an identity of their own and exist as individual particles. Almost it says to us that observation is the cause of existence. This is the reason Quantum Physics does not talk in absolute locations but talks in terms of probabilities of availability of the matter. This describes something very fundamental to matter in the universe. Does it mean matter reacts to human consciousness? Are results subjective to observation? This brought a whole new dimension to Quantum Physics. Almost it is like saying the world has an impact because of the existence of our observation.

Various philosophies and schools of spiritualism have been suggesting power of visualization, meditation and will power from centuries. This is a new twist to the story at the particle level we can notice that behavior. Soul of a person, described in Indian philosophy as Atma, has been described as being part of a universal consiciousness. Consciousness is viewed as part of a loarger universla part called collective conscriousness even in

Pshychology by renowned psychologists. Carl Jung has viewed world very differently and has subgested infications of what is in deep thoughtful states of human consciousness and its connections to symbolism used in spirituality.

What happens to consciousness when we sleep? Is it becoming inherent, withdrawn into the self, dormant through the nervous system and neurons of the brain? Even tougher question, what happens to consciousness when one dies? Recent studies and ideas from scholars and doctors like Dr. Robert Lanza indicate from biocentrism that death is figment of our consciousness. He states that we believe in death because we have been told we will die. It is worth noting the point he mentions, we associate ourselves with body, and we know that bodies die.

When unobserved and not withheld, it is possible that the consciousness spreads like a wave into the cosmos without limitations of time and space. This might sound totally illogical but that seem to be suggestion and possiblility with new discoveries of Physics and words of the ancient spiritualism. At times people who worship a particular form, are they trying to manifest or invoke the energy of the form using their consciousness? Are forms helping them to focus their attention to better events in life thereby able to trigger positive thoughts and positive events?

Entanglement precisely suggests that if we take two entangled particles and create effects on one automatically other particle, however far in space it is behaves correspondingly and its proven that distance does not matter. This information is travelling faster than light and called as spooky action at a distance by Einstein. This indicates a clear predictability and we know destiny of other particle if we have an entangled particle available. Experiments are at smaller scale but one day this will open up abilities to control bigger and massive objects and will lead to experiences similar to teleportation and sophisticated communication. Humanity is looking at advanced methods of scientific living and destiny based on these. Probability probably can be conquered by consciousness and its ability to focus on events or visualization. More researched need to confirm and analyze effects of observation. More resarched needed to confirm and analyze effects of observation on changing events at gross level of the world. Spiritual studies are more than scientific stadies at this spoint of time.

<u>6. Law of Manifestation</u>

Let us take a real world example first. We can make a prediction about sun rising in the east every day. But we cannot predict whether sun is going to be visible to us or not as we do not know how cloudy the weather might be accurately each minute. Trillions of dollars are played in lottery and people make predictions on the outcome while buying tickets. Similaryly at casinos millions of people bet and work on chance and randomness of gemes. They succeed if they could predict the outcome. For centuries we as mankind have been trying to predict events by various methods. Some involved spiritual techniques and some mathematical and some intuitive efforts. There are many statistical methods and scientific techniques too developed in this regard.

Changing destiny involves changing the outcomes. The outcomes are outside the framework of the observer. Many theorists wrote books and claimed that changing destiny is possible through visualization or strong belief that something will surely happen. Let us say for example a person has to pass an interview, they say if you believe you are succeeding or believing that you can succeed it will happen. Power of positive thinking! Unfortunately, not all times people are succeeding through such alteration of events by mere belief or will power. So there is one or more parameters that are controlling events. The horizon of events are influenced by many people many random looking or actually rail(lom sequence of events. One additional dimension that can add to li in influencing paradigm is Nature. Somehow its my personal belief hri t Nature selects events also. If we take famous Darwin's theory and ex t end it, this becomes easy to understand. Like there is selection of by the natural intelligence and survival of the fittest happens, niliri wily the ideas and events should be selected by nature. Nature picks i he best and fittest ideas and manifests them. Nature reads islintivietisness, as a collective consciousness and manifests the fittest I llif Inn hest of the evolution of universe. So in order to change a pm-setts' destiny one has to align individual destiny to be in sync and sty to the higher level consciousness. Working on principles of peace, harmony and collective happiness brings more success than isoloated thinking.

7. Super Consciousness as creator of Destiny

Existence of Super Consciousness has been a controversial debate and now that discussion entered realms of Physics too. People attribute this cosmic intelligence to God. Thanks to consciousness studies, the importance of God has increased and discussed even more now in Quantum Physics, with nice names like God Particle, God effect etc. If God exists the operating principles are much different and higher and we cannot place Him or Her on the ordinary mortal playground we live every day. His purpose, power and execution exceed anything imaginable. He transcends religious and logical boundaries naturally, yet let us make an attempt to understand little bit here.

The divine play is amazing. It is difficult to predict the plan of the divine that can bring beautiful sun, moon, stars, galaxies and above all the time, which remains a challenge forever for the mankind to understand. Forget about predicting the distiny of the one who created destiny. Life is incomplete without knowing that divine. Can there be a rain without water? Can there be a line without a dot? Many people today think, can there be life without God? I do not care what form he takes or we make out of eternity. He is omnipresent any way, if exists. I worship the closest form that suits my mind, says the believer. We know, understanding the divine form completely is not easy. Even if one can understand a form, there is Maya, the illusion. White light is not just white; it is actually combination of seven colors. You see millions of stars in the sky today. Amazingly those stars are not there today but belong to a distant past. Seeing is not believing- even in modern day science.

God has no definite form, because all

forms belong to Him. He manifests into any form the devotee wants to see him in. He has no confinements of gender, place and time. He is omnipresent. How do we worship and capture someone who is everywhere? Here is the explanation offered by a Guru I came across.

Let us take a very simple example from Mathematics and let me give you a simple task. When a number was added to 4, the result happened to be 5. What is that number? We solve it usually as below in the Mathematical manner.

Let us assume the unknown to be ' X ', then, X + 4 = 5, X = 5 - 4 = 1 and therefore value of X is equal to 1. The unknown number is '1'.

In this example, we solved it quite easily, by assuming the unknown as X. When we solved the problem using steps were defined by the Science of Mathematics, we came to know the actual value of X. By the way, we know at the beginning itself, that the answer to the question is not X but some number, which we will obtain and understand at the end of solving the problem. Now let us take the case of God, by adopting a way similar to above-mentioned Mathematical method let us understand. Anyway, we could solve the problem of God forms, by assuming the unknown entity as a form, any form. The end result of a Mathematical equation is same whether one assumes the unknown as X, Y or Z. The equation is important than the actual assumption. The faith process is important than the name and form of God. At the end of the practice of one sees the conscious that pervades everywhere.

As we solved the problem through steps defined by the science of Mathematics we came to know the actual value of X. Similarly the Science of Spirituality defines steps to solve the problems and riddles of the spiritual world. We know at the beginning itself, that the answer to the question is not X but some number which we will obtain and understand at the end of the problem. In the same way at the beginning of the practice of spirituality itself we know certainly that we are merely assuming God in a finite form just for the sake of convenience.

The radiant beings of light, called Gods function in a different plane. Divine power is not a constant but variable, if I am permitted to use language of Mathematics. Until one does practice of spirituality— awakening the consciousness, one cannot truly visualize what the actual form of Clod is. Even to attain results, similar to Mathematics, all steps need to be accurate and error free. Any flaw can make the end result vary and he wrong. At the same time one needs to remember that the steps in which the problem is done is important than what the assumed entity is, whether it is X, Y or Z.

We have been chasing and looking for tachyons, particles that travel 1.1 hi ter than light. Some rumors and unconfirmed, discussions exist about primitive semi-radius tachyons hypothesis which lead to a leading scientist of Quantum Physics affirming existence of higher intelligent being, God. Light somehow holds critical key to the secrets of nature.

Existence of light is a gift to us. The discovery of behavior of light opened totally new doors of knowledge to us. We thought light shows us the path and life. Einstein spent decades analyzing behavior of light. He asked simple question,

what would I see if I travel along light, at the same speed of it? Would it look like it slows down? He realized it does not slow down and instead it looks like traveling at the same speed irrespective of the speed of the observer. This study further revealed that properties of objects traveling at that high speeds change dramatically including shrinking and increase in mass. That started search for particles that travel faster than light, called tachyons. So far there seems to be no evidence for the existence of tachyons but if they exist they possess properties that are incredible to common sense. Since they can move so fast, they can be anywhere in the universe instantly. It is believed that if we ever build a tachyon detector and if there is one tachyon in this universe, due to the velocity it moves its ability to transcend aspects of time, it will show up as millions of tachyons. Just one single tachyon can be at many places at once. These are some of the marvelous suggestions by top scientists of the world and there is wonderful research into the mysteries of such particles and Quantum worlds. What this reveals is the fact we all agree that there so much more unknown in this universe. We are mere glimpse of smallest fraction of the Time, creation spent so far. It took billions of years to generate life on this planet and took trillions of years may be to create environment suitable for sustaining a life on earth. Heaven exists or not we do not see it, but this earth, our tiny wonderful planet is vast enough to explore possibilities of greatness and success.

Much emphasis laid on light and worship of light. Starting of many spiritual prayers involve candles and lights. Meditating upon light and thanking Sun as the source of light is practiced by many. In Hinduism for example, its believed that there are many planes of existence called Lokas, and there are Suns that illuminate these. Worship of Sun is also believed to give power of giving life. Light is not only source of life but giver of energy to life. It is believed when one masters life he will know secrets of giving and bringing back life. The ancient of science of mantras or the so called chants seem to be aimed at giving that energy and mastering the powerful realms of cosmic consciousness.

8. Aligned Actions & Quantum Physics

How to align actions with Nature and have the best destiny we desire? One should stop seeing oneself as a self-centered personality. As one sees higher gains more control on destiny. This is probably the reason, people who worked hard, who believed in themselves at the same time worked on collective benefits of society succeeded more in this world. One great thing about knowledge is, it expands ones' consciousness. One starts seeing better and alternative ways of looking at things and life itself.

As we grasp big picture, under every simple incident in life there is significance. Every action is influenced by several known and unknown factors. Life, seemingly so simple process is actually a complex web woven through actions and reactions determined by the laws of nature and nature of people. Learning about nature is unending. Learning begins from any point of the world around us to anything that is invisible or far from us. Learning is the thing that encompasses every field of knowledge even though we were trained or conditioned to think knowledge

as being fragmented into various topics, like subjects and syllabus taught in a school. Because of this perception one is unable to visualize the whole universe into one unified field of knowledge. This continues until one realizes that there are interlinks between these so called diversified subjects. When it comes to complete understanding of Nature, in totality, it is truly realized that all the subjects are actually sub-sets of one vast field of eternal holistic knowledge. As we evolve we learn more and more and then keep improving our system of thinking and learning as well. Quantum Physics and Consciousness are no exception, and time has come to combine these to understand all the realms under one umbrella, also alter destiny of mankind, with experience of manipulating subtle laws of universe.

Each of us sees himself as an individual physical soul or the self of consciousness, with its inherent awareness of understanding and living through the continued psychological, biological, spiritual, physical and metaphysical changes. Due to the wide spectrum of these elements, an individual seeker is challenged with variety of things and cannot totally comprehend everything. He observes what lies in front of him and tries to get to know what is there beyond the known horizon, into the mysterious valleys and turning points of future and also about the past wondering what is destiny! With each vision or expectation he is saying 'hello' to the enigma of a time that is about to arrive in life as events. More immense challenge for him is how to avoid a particular bad or unpleasant event standing right in front of him or coming in future. We look curiously and hopefully to Quantum Physics world if it holds the secret to manage consciousness in order to get desired outcomes!

We have to venture into understanding the intricacies of the hidden areas of unbounded knowledge like consciousness that is none other than of course, fabric of 'life' itself, focusing on unknown dimensions of it.

9. Beyond Life

Life itself seems like a movie, with incidents placed as static parts and help in making of the film in motion producing effect of a series of events. LIFE to me seemed to have different levels of understanding and components that make it work together. Layers of Integrated Fundamental Events, abridged it as LIFE. Like all of us, asked many questions and searched Philosophy, Spirituality and Science. The great fascination then grew for Quantum Physics and its promising story of exploring and revealing the unknown. If we understand the realm of consciousness fully using Quantum Physics and other sciences, we will understand its very significant and key to life itself. We would look for ways to strengthen the very consciousness, we will look for ways to expand it, better it and use it for better life. We need not have to reinvent the wheel and fortunately in Indian Philosophy and Buddhism there are effective methods of strengthening consciousness. Take for example yoga, meditation and chanting of mantras. These methods allow one to strengthen oneself and also become conscious being of eternal life.

Experience of most beautiful aspects of life is a gift. Inability to see it is blindness. Every miracle in nature is poetry. The colors of rainbow to aurora borealis

constitute lines of poetry with hidden and subtle depth. You can experience the mastermind of creation with unfathomable knowledge, grip, expertise, infinite potential, care and many other innumerable qualities in every particle of this creation. There is so much in the cosmos. Equally much more is there in atomic level. We have not yet tasted the appetizer of God or Creator's mysteries understood from realms of Quantum Physics. We are yet to understand the secret of life and go beyond organic chemistry. We are yet to get to the geometrical subtleties of the hexagonal snow-flakes to creative symmetries like chirality of molecules. We are yet to see how boundaries were defined and light itself functions. We are yet comprehend how mass exists and experiments in CERN yet to reveal the facts about creation of galaxies to singularity. Can you see, can you really see how much planning is around you. Can you see how much intellect would have been used by Nature in making you see this page? How much IQ would be needed in making you process now what you are seeing and make you experience the feeling. If you can see this you can also see, there are seasons, waves of ocean, bio-clocks, gravitation and many other components which seem to be in zillions in existence that work in order for the universe to exist. If you can see that, if you can see all of that, if you can see all of that at once, you can see Ruthambhara! You can see the connections of strings around you, starting from you to the entire universe. Beauty is that you are not connected like patient with wires or strings, you are connected magically, musically, wirelessly, invisibly, wonderfully, caringly like a babies connected by umbilical chords to the rest of the world. You are part of a cosmic intelligence, Vijnana and its plan that's why you are part of this creation. You have a place, mission and meaning. You are a poem in the book of world. You are a light in the massive cosmic darkness. Your thoughts also travel faster than light. You also have all the so called dimensions and connections built in you to make you sense beautiful aspects of this Universe. You are miniature world if you realize. You can change destiny, you possess the most powerful tool in the universe called consciousness that is already proven to change the fundamental particles and also challenge the past thinking process of foundations of science itself!

■

Senior Manager in a Global Corporation, IGT, San Francisco, USA.

खुदा की मोहब्बत को फना कौन करेगा
सभी बंदे नेक हों, तो गुनाह कौन करेगा
ए खुदा मेरे दोस्तों को सलामत रखना
वरना मेरी सलामती की दुआ कौन करेगा
और रखना मेरे दुश्मनों को भी महफ़ूज़
वरना मेरी तेरे पास आने की दुआ कौन करेगा

- मिर्ज़ा ग़ालिब

राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-साहित्य में प्रकृति के विविध रूप

निशा चौहान

मानव की विशिष्ट जीवनानुभूतियों का कलात्मक संप्रेषण ही साहित्य है। मानव-जीवन की सम्पूर्णता, विश्वसंस्कृति एवं समाज की समग्रता तथा प्रकृति जीवन की विराटता का पूर्ण कलात्मक साज-सज्जा के साथ चित्रण रहने एवं साहित्य को नूतनता तथा विविधता प्रदान करने के कारण 'यात्रा-साहित्य' हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण साहित्यिक विधा है। 'यात्रा-साहित्य' साहित्यिक यात्री की विशिष्ट यात्रानुभूतियों का संवेदनपूर्ण कलात्मक चित्र प्रस्तुत करने वाला एक साहित्यिक रूप है। यात्रा साहित्यकार जब अपनी कलात्मक दृष्टि से यात्रा में देखी विविध संस्कृतियों, वस्तुओं, स्थानों एवं सौन्दर्ययुक्त प्राकृतिक दृश्यों की अनुभूतियों को एक निश्चित साँचे में ढालकर अभिव्यक्त करता है, तब यात्रा-साहित्य का जन्म होता है।

हिन्दी साहित्य का यात्रा-साहित्य विश्व संस्कृति एवं प्रकृति के सौन्दर्य आदि को समाहित कर ही एक नई विधा यात्रा साहित्य को अस्तित्व प्रदान करता है। वस्तुतः यात्रा-साहित्य विश्व संस्कृति का सुन्दर दर्पण है। सम्पूर्ण यात्रा-साहित्य प्रकृति की चित्रशाला होता है। प्रकृति के विविध सौन्दर्य और आकर्षक प्राकृतिक रूप तो इस साहित्य की कभी समाप्त न होने वाली सम्पदा हैं। प्रकृति के विविध रूप हिमाच्छादित पर्वत शृंखलाएं, मेघाच्छादित उपत्यकाएं, विभिन्न रंगों एवं सुगन्धित फूलों से भरे बाग-बगीचे एवं विस्तृत खेत-क्यारियों के रंगों से मोहक घास के मैदान, देवदार, चीड़, चिनार के वृक्षों से भरे जंगल यात्रा-साहित्य के आकर्षण का केन्द्र रहता है। यही विविध रूप मशीनीकरण एवं महानगरीय भागदौड़ से उत्पन्न मानव की ऊब को दूर कर प्रकृति के सौदंर्य से कुछ पल आराम देकर जीवन से समरसता तथा नई स्फूर्ति प्रदान करते है। इस प्रकार यात्रा-साहित्य भौतिक सुख साधनों के साथ मानव को प्रकृति का आनन्द लेने में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। साहित्य समाज को प्रभावित करने और दिशा देने का कार्य करता है और आम आदमी के जीवन पर यात्रा साहित्य का गहरा प्रभाव देखने को मिलता है।

हिन्दी साहित्य के यात्रा-साहित्य में आज से करीब 127 वर्ष पहले संसार के लिए कुछ कर गुजरने का अटूट संकल्प लेकर यायावरी की दुनिया में एक अद्भुत मिसाल कायम करने वाले विराट व्यक्तित्व से सम्पन्न एक ऐसे महापुरुष का जन्म हुआ था, जिसे साहित्य में महापंडित राहुल सांकृत्यायन के नाम से जानते हैं। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे, एक साथ पर्यटक, साहित्यकार, भाषाविद्, राजनीतिक, समाज सुधारक, विचारक, दर्शनशास्त्री, इतिहासविद् तथा पुरातत्वविद् आदि विभिन्न रूपों में विश्वस्तर पर जाने जाते

हैं। उनकी कलम जिस भी क्षेत्र में उठी उसकी गहराई तक कई और विश्लेषण तथ्यों को बाहर निकालती गई। उन्होंने न केवल विविध भाषाओं में लिखा बल्कि भाषाओं का गहन अध्ययन और मनन भी किया। एक साथ भाषा, साहित्य, संस्कृति, विज्ञान के श्रोता होने के कारण वस्तुतः वे एक सांस्कृतिक राजदूत थे।

हिमालय के प्रति उनका विशेष आकर्षण रहा, जिस कारण उन्होंने हिमालय की बार-बार यात्राएं की। परन्तु उन्होंने इन यात्राओं के अनुभव को सिर्फ एक पर्यटक प्रवृति तक सीमित नहीं किया बल्कि अपने उन अनुभवों को लेखन में निबद्ध किया और अपने यात्रा के जीवनानुभवों से साहित्य निधि को समृद्ध किया। उन्होंने हिमालयी यात्राओं पर विभिन्न यात्रा-साहित्य की रचना की जिनमें उन्होंने उन सभी अनुभवों का वर्णन किया जो उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से देखा। इससे एक साथ वहाँ का रहन-सहन, खान-पान, भाषा-बोली, सभ्यता-संस्कृति सभी का ज्ञान प्राप्त होता है। राहुल जी प्रकृति प्रेमी थे इसीलिए उन्होंने अपनी अधिकांश यात्राएँ पैदल की। हिमालय में उन्हें सबसे प्रिय देवदारू के वृक्ष और हिमाच्छादित पर्वत लगते हैं, वह उसे प्राकृतिक सौन्दर्य का मानदंड मानते थे। हिमालय क्षेत्र अति दुर्गम होने पर वहां यातायात की सुविधा न के बराबर होने के कारण और लेखक का विपरीत स्वास्थ्य भी उनकी दृढ़ इच्छा शक्ति को नहीं डिगा सका। वे बार-बार हिमालयी यात्रा पर गए और वहां के परिवेश परिस्थितियों का अपने यात्रा वृतांत में वर्णन किया। प्रत्येक क्षेत्र की अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं प्राकृतिक विशेषताएं होती है, जो कि उस क्षेत्र को अलग पहचान दिलाती हैं। अतः लेखक ने अपने हिमालयपरक यात्रावृतांतों में उन विभिन्न परिस्थितियों का वर्णन कर न केवल भारत बल्कि विश्व को हिमालयी वातावरण एवं परिवेश से परिचित करवाया। अतः उनके ये यात्रावृत्तांत अन्य यायावरों के प्रेरणा स्त्रोत बनकर प्रेरित करते रहते हैं। मनुष्य सदियों से प्रकृति की गोद में फलता-फूलता रहा है। इसी से ऋषि-मुनियों ने आध्यात्मिक चेतना ग्रहण की और इसी ही के सौन्दर्य से मुग्ध होकर न जाने कितने कवियों की आत्मा से कविताएं फूट पड़ी। वस्तुतः मानव और प्रकृति के बीच गहरा सम्बन्ध है। दोनों एक-दूसरे के पूरक है। मानव अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति की ओर देखता है और उसकी सौन्दर्यमयी बलवती जिज्ञासा प्रकृति सौन्दर्य से विमुग्ध होकर प्रकृति में भी सचेत सत्ता का अनुभव करने लगती है। मनुष्य के लिए प्रकृति से अच्छा कोई गुरु नहीं है। आज तक मनुष्य ने जो कुछ हासिल किया वह सब प्रकृति से सीखकर ही किया है।

मनुष्य के लिए धरती उसके घर का आंगन, आसमान छत, सूर्य-चांद-तारे, सागर-नदी और पेड़-पौधे आहार के साधन मात्र नहीं है बल्कि आम आदमी ने प्रकृति के तमाम गुणों को समझकर अपने जीवन में सकारात्मक बदलाव किए। न्यूटन जैसे महान वैज्ञानिकों को गुरुत्वाकर्षण समेत कई पाठ प्रकृति ने सिखाए हैं। दरअसल प्रकृति ने मानव को कई महत्वपूर्ण पाठ पढ़ाए जैसे-पतझड़ का मतलब पेड़ का अंत नहीं है। इस पाठ को जिस व्यक्ति ने आत्मसात् कर लिया वह अपने जीवन में कभी निराश नहीं हो सकता।

हमारे धार्मिक ग्रंथ, ऋषि-मुनियों की वाणियां, कवियों की काव्य रचनाएं, सन्तों-साधुओं के अमृत वचन सभी प्रकृति की महत्ता से भरी पड़ी है। हिन्दु धर्म में ऋग्वेद में प्रकृति देवी की पूजा की जाती है, वहीं पीपल, वटवृक्ष आदि की पूजा करना आज भी देखा जाता है। इसलिए यह कहना अतिश्योक्ति नहीं कि विश्व की लगभग सारी सभ्यता का विकास प्रकृति की गोद में हुआ और तब इसी से मनुष्य के रागात्मक सम्बन्ध भी स्थापित हुए।

प्रकृति की महत्ता को प्रतिस्थापित करते हुए पद्मपुराण का कथन है कि जो मनुष्य सड़क के किनारे तथा जलाशयों के तट पर वृक्ष लगाता है,

वह स्वर्ग में उतने ही वर्षों तक फलता-फूलता है, जितने वर्षों तक वह वृक्ष फलता-फूलता है। इसी कारण सनातन परम्परा में वृक्ष पूजन को अनिवार्य माना है। यही पेड़-पौधे जब अपने फलों के भार से झुक जाते है तो मनुष्य को शील एवं विनम्रता का पाठ पढ़ाते हैं। साहित्य के क्षेत्र में भी प्रकृति रस आदि का अनुभव कराती नज़र आती है। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द मानव जीवन में प्रकृति के महत्व को इस प्रकार समझाते हैं 'साहित्य में आदर्शवाद का वही स्थान है जो जीवन में प्रकृति का है।'[1] कहा जा सकता है कि प्रकृति से मनुष्य का सम्बन्ध अलगाव का नहीं है, प्रेम उसका क्षेत्र है। सचमुच प्रकृति से प्रेम मानव को उन्नति की ओर ले जाता है और इससे अलगाव मानव की अधोगति के कारण बनते हैं।

हिमालय एक ऐसा पवित्र स्थल है जिसे ऋग्वेद में देवता का स्थान प्रदान किया गया है। सामवेद में इस स्थल को पृथ्वी का केन्द्र माना गया है। हिमालय अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए विश्व प्रसिद्ध है। हिमालय में मनलुभावनी और आकर्षित करने वाली अनेक पर्वत शंखलाएँ, चोटियाँ व घाटियाँ है। यहीं विशेषताएं राहुल सांकृत्यायन को लगातार अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। राहुल को हिमालय से बहुत लगाव था, जिस कारण उन्होंने बार-बार हिमालय की यात्राएं की। एक बार पं. कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने राहुल से पूछा था, 'आप खूब घूमे हैं और आपने संसार के अनेक सौन्दर्य स्थल देखे हैं संसार में सबसे सुन्दर क्या लगता है? राहुल का उत्तर था, 'हिम मुझे सुन्दर लगता है। हिम पड़ा हो, दूर तक हिम ही हिम पड़ा हो, दूर तक हिम ही हिम और बीच-बीच में कहीं-कहीं कुछ और, बस बहुत सुन्दर लगता है-देवदारू बहुत सुन्दर लगता है।'[2] स्पष्ट है कि हिमालय के प्राकृतिक सौन्दर्य ने लेखक का मन मोह लिया था जिस कारण उनका हिमालय की जिन्दगी के प्रति आत्मीयता-पूर्ण लगाव हुआ। लेखक ने हिमालय की प्रकृति में उसके सौन्दर्य को जो देखा और महसूस किया उसका रसास्वादन व आनंद की अनुभूति, अपने यात्रावृतांतों के द्वारा पाठकों को भी कराया।

राहुल सांकृत्यायन जिस प्रकार हिमालय क्षेत्र के लोक जीवन के प्रत्येक पहलुओं का वर्णन अपने यात्रावृतांत में किया है। उसी आत्मीयता से उन्होंने हिमालय जैसे दुर्गम क्षेत्र के प्राकृतिक सौन्दर्य को भी अपने हिमालयपरक यात्रावृतांतों में वर्णन किया। उन्होंने 'तिब्बत में सवा वर्ष' नामक यात्रावृतांत में भोट के लाका शिखर का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है 'इस लापर खड़े हो हमने सुदूर दक्षिण ओर दूर तक हिमाच्छादित पहाड़ों को देखा, यही हिमालय है और तरफ भी पहाड़ ही पहाड़ देखे, किन्तु उन पर बर्फ न थी।' कहा जा सकता है हिमालय का परिचय उसके बर्फीले पहाड़ों से ही होती है। हिमालय के पहाड़ हमेशा ही बर्फ से ढके रहते है, बर्फीले सुन्दर पहाड़ ही यायावर को अपने सौन्दर्य से आकर्षित करते हैं।

कश्मीर को धरती का स्वर्ग उसके प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण ही कहा जाता है। लेखक ने कश्मीर के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखते है 'यहाँ से सारी कश्मीर उपत्यका दिखाई पड़ती है। चारों तरफ घेरे हुए पहाड़ जिनके पीछे की ओर हिमाच्छादित शिखरवाले पर्वत है- बीच में जगह-जगह लम्बे-लम्बे जलाशय, सर्प की भाँति कुटिलगति ही जेहलम, दूर तक सफेदे की दोहरी पंक्तियों के बीच जाने वाली सड़कें, मीलों तक शहर से बाहर भी सेब, बादाम आदि के बागों में बने हुए सुन्दर बँगले, हरी घासों से ढके लम्बे-लम्बे क्रीडाक्षेत्र, सुन्दर चिनार वृक्षों की मधुर शीतल छाया के अन्दर हरी घास के मखमली फर्शों वाली सुभूमियाँ देखने में बड़ी सुन्दर मालूम होती है।' स्पष्ट है कि कश्मीर के पर्वतीय दृश्यावली का वर्णन बहुत अच्छा किया है जिससे पता चलता है कि लेखक हिमालय के प्रति आकर्षित थे।

प्रकृति ने अपने सारे सौन्दर्य को हिमालय भूमि को प्रदान कर दिया है। हिमालय का प्राकृतिक सौन्दर्य सभी जगह एक जैसा नहीं है, उसमें वैचिुय पाया गया है तभी तो हिमालय के विभिन्न क्षेत्र हिमालय के पृथक-पृथक सौन्दर्य का नेतृत्व करते नज़र आते

है। तिब्बत की पर्वतीय दृश्यावली का वर्णन लेखक कुछ इस प्रकार से करते हैं 'आगे एक लम्बा मैदान मिला, जिसे हमें बीच से चीरकर चलना था। यहाँ खाली आँखों से भी कुछ छोटी-छोटी घासें दिखाई पड़ती थी, भेड़ चर रही थी। बाईं ओर छोटे-छोटे हिमशिखरों से घिरा एक उतुंग हिमशिखर था। मन में आता था यदि उस पर जाकर थोड़ी देर बैठने को मिलता। वहां से भोट और भारत दोनों पर नजर डाल सकता।' अतः लेखक ने तिब्बत के फ-री-जोङ् नामक स्थान जो कि भारत और तिब्बत के सीमा में स्थित है, के घास के मैदानों का प्राकृतिक सौन्दर्य से अवगत करवाया है।

लेखक के यात्रावृतांतों की एक खासियत यह भी है कि उन्होंने अपने यात्रावृतांतों में न केवल स्वयं के प्राकृतिक दृष्टिकोण बल्कि अन्य लेखकों के विचारों को भी स्पष्ट किया है 'हिमाचल भाग-1' में उन्होंने कर्नल हार्टकोट के प्राकृतिक सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत किया है 'डलहौजी के ठीक नीचे से पीरपंजाल के चरणों तक निम्न पहाड़ों में अवस्थित इस भूखंड का प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त सुन्दर है। गांवो, वृक्षों के झुरमुटों और बहती हुई नदियों द्वारा चिह्नित विस्तृत तथा समतल से मैदान के परे भव्य महान् अत्युन्नत मिहिममंडित हिमालय उठा हुआ है।' इस प्रकार कर्नल हार्टकोट ने हिमाचल के डलहौजी एवं उसके साथ लगते सुन्दर पर्वत अपनी प्राकृतिक अनुपम बिखेरती छटा का वर्णन किया है।

राहुल सांकृत्यायन अपनी तिब्बतीय यात्राओं के दौरान जब नेपाल पहुँचे तो वे नेपाल के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर अचम्भित हुए क्योंकि हिमालय के प्रत्येक पर्वत एवं स्थान का अपना अलग सौन्दर्य है। नेपाल में पशुपतिनाथ मंदिर का ही एक भाग भीमफैदी के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया है 'अब हम तराई के जंगल से आगे पहाड़ों में जा रहे थे। हमारे दोनों तरफ जंगल से ढके पहाड़ थे, जिन पर कहीं-कहीं जंगल साफ करने का काम अब भी जारी था, कितनी ही जगह छोटी-छोटी पहाड़ी गाये चरती दिखाई पड़ती थी।'[9] स्पष्ट है कि भीमफैदी अपने सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है परन्तु धीरे-धीरे जंगल अब साफ यानि कि कट रहे हैं परन्तु पूरी तरह से नहीं फिर भी उन पहाडों व हरी घास पर चरती गायें अनुपम छटाएं बिखेरती दिखती है। तिब्बत में यल्मों गाँव का प्राकृतिक दृश्यांकन का वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं 'पहाड़ की एक फैली बाँह को पार करते ही मानों नाटक का एक पर्दा गिर गया। चारों ओर गगनचुम्बी मनोहर हरे-हरे देवदारू के वृक्ष खड़े थे। नीचे की ओर जहाँ-तहाँ हरे-भरे खेत भी थे। किन्तु कहीं भी प्रकृति देवी अनीलवसना न थी। जगह भी बहुत ठण्डी थी।'[10] कहा जा सकता है कि यल्मों का प्राकृतिक सौन्दर्य काल्पनिक सा प्रतीत होता है। एक पर्वत को पार करते ही ऐसा प्रतीत होता है मानों किसी नाटक का पर्दा गिर गया हो। इसीलिए यह कहां भी गया है कि प्रकृति हिमालय में अपने विविध रूपों का दृश्य कराती है। 'तिब्बत में सवा वर्ष' में लेखक ने तिब्बत के सौन्दर्य को अंकित किया है 'अब हम बड़े मनोहर स्थान में जा रहे थे। चारों ओर उत्तुङ् शिखरवाले हरियाली से ढके पहाड़ थे जिनमें जहा-तहा झरनों का कलकल सुनाई देता था। नीचे फेन उगलती कोसी की वेगवती धार जा रही थी। नाना प्रकार के पक्षियों के मनोहर शब्द सारी दून को जादू का मुल्क सिद्धकर रहे थे।'[11]

अन्ततः कहा जा सकता है कि हिमालय अपने प्राकृतिक सौन्दर्य से अपनी अलग पहचान रखता है। इसके प्रत्येक प्रान्त का अपना अलग-अलग प्राकृतिक सौन्दर्य है, जिसका अनुभव कर मानव अपने आप को तृप्त करता है। परन्तु आधुनिक युग में भौतिकवाद के अंधानुकरण में मानव इस प्रकृति के सौन्दर्य को सुधारने की अपेक्षा बिगाड़ने में लगा है। अपने भौतिक उपभोग के लिए प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक मात्रा में दोहन कर रहा है, जंगलों को काटा जा रहा है। मनुष्य ने विकास के नाम पर हिमालयी पर्यावरण को अत्यंत क्षति पहुंचाई है जिससे पर्यावरण से सम्बन्धित अनेक चुनौतियां खड़ी हो चुकी

है। हाल ही में हुई उत्तराखंड त्रासदी तथा नेपाल में आए भीषण भूकम्प इसी पर्यावरणीय क्षति का नतीजा है। यदि समय रहते इन पर्यावरणीय चुनौतियों से नहीं निपटा गया तो निकट भविष्य में मनुष्य प्रकृति, पर्यावरण के कोप के भागी बनेगें यह तय है। प्रकृति के सौन्दर्य को अलकृंत करने वाले कई प्राकृतिक तत्व होने हैं जैसे सुन्दर बर्फीले पहाड़, कल-कल करती नदियाँ, झरने, बर्फीले दिनों में बर्फ से नहाए पेड़-पौधे, साफ-साफ नीला आकाश, घास के हरे मैदान, फूलों से लदी घाटियां आदि। ऐसे अनमोल रत्न मुक्त प्रकृति की खूबसूरती को चार चाँद लगाती है। मुक्त प्रकृति से अभिप्राय ऐसी प्रकृति से है जो बिना किसी बनावटी साधनों के बिना ही स्वयं कुदरती रंगों से अलंकृत हो। लेखक ने हिमालयपरक यात्रावृतांतों में प्रकृति के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है। जिसमें मानव अलंकृत प्रकृति भी और मुक्त प्रकृति भी विद्यमान है। 'हिमाचल भाग-1' में लेखक हिमालय की मुक्त प्रकृति का वर्णन कर हिमालय की प्रकृति का रसास्वादन का अनुभव करते दिखते हैं। वे लिखते हैं 'बर्फ बहुत पड़ती है, लेकिन अप्रैल से वह पिघलने लगती है, फिर लम्बी-लम्बी हरी घासों का फर्श बिद्द जाता है, जिसमें बरसात में रंग-बिरंगे फूलों की फुलवाड़ी सज जाती है।'[12] स्पष्ट है कि बर्फीले मौसम के बाद हिमालय के मुक्त प्रकृति के सौन्दर्य को उकेरा गया है।

कुदरत ने प्रकृति को विभिन्न अलंकरणों से अलंकृत किया है इन्हीं अलंकरणों के बारे में राहुल सांकृत्यायन लिखते है 'छोल्टू का विशाल बाग क्रीड़ोद्यान-सा मालूम होता है, विशेषकर एक छोर पर सतलुज की घर-घर ध्वनि ओर दूसरी ओर उत्तुंग सरल-देवदारूओं के कारण।'[13] कहा जा सकता है कि हिमाचल के किन्नौर के छोल्टु नामक बाग को अलंकृत करने वाले अलंकरण, वहां खड़े सुन्दर देवदार के वृक्ष एवं सतलुज नदी की सुंदर ध्वनि का वर्णन किया गया है। यही सुन्दर देवदार और नदी की आवाज इस बाग को रमणीक स्थल बनाते है। वहीं किन्नौर में जब चूलियाँ (खुबानिया) पकने लगती है तो प्रकृति का सुनहरा दृश्य बड़ा ही मनोरम लगता है। लेखक ने अंकित किया है 'छतें सुनहली चूलियों से बसन्ती बनी है, कितने ही खेतों को भी उन्होंने सुनहला कर रखा है। जुलाई मास का यह एक सुन्दर दृश्य है जो दर्शक का ध्यान अपनी और आकर्षित किये बिना नहीं रहेगा।'[14] इस प्रकार कह सकते है कि जुलाई मास में चूली व अन्य फसल पकने के कारण किन्नौर की धरती सुनहली हो जाती है और यह दृश्य बड़ा ही मनोरम लगता है। किन्नौर की प्रकृति सौन्दर्य से परिपूर्ण है तभी तो लेखक अपने आप को एक कवि हृदय होने की इच्छा रखते है ताकि वे प्रकृति के इस सौन्दर्य को अपने में आत्मसात् करने के अलावा कविताओं की रचनाओं में इसका वर्णन कर सके। उन्होंने लिखा है 'मेघों को लुभाकर लोगों का दिल दुखाने में भी मजा आता है। यहाँ मेरे वासस्थान से जिस तरह वह सतलुज की धार के उपर-उपर तैरते जा रहे थे और जिस तरह सफेद बादलों के बीच से सूर्यकिरण, प्रतिबिम्बित हिमाच्छादित शिखर झाँक रहे थे, उन्हें देखन और वर्णन करने के लिए तो किसी कवि के नेत्र और हृदय की आवश्यकता थी।'[15]

हिमालय को कुदरत ने विभिन्न प्राकृतिक सौन्दर्य के नायाब तोहफे से सजाया है उसे किसी मानव द्वारा अलंकरण की आवश्यकता नहीं। वह स्वयं ही मुक्त प्रकृति सौन्दर्य के रूप में हिमालय की शोभा बढ़ाता है। राहुल सांकृत्यायन इसी मुक्त प्रकृति का सौन्दर्य कुछ यूँ वर्णित करते हैं 'वहाँ कोई संकेत-सूचक साइनबोर्ड नहीं था और रास्ते में भी कोई बतलाने वाला आदमी नहीं था, तो भी बड़ी पगडंडी को पकड़कर हम गाँव में पहुंच गए। रास्ते में जौ-गेहूँ के हरे खेत खड़े थे, जिनमें स्थलकुमुदिनी फूली हुई कश्मीर के केसर के खेतों का सा दृश्य उपस्थित कर रही थी।'[16] स्पष्ट है कि हिमाचल के कुल्लू जिले एवं कश्मीर के रंग-बिरंगे लहलहाते खेतों के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। डलहौजी के सौन्दर्य

को लेखक कुछ इस प्रकार वर्णित करते हैं 'बनीखेत ही में गरमी ने पीछा छोड़ दिया था और आगे तो शस्यश्यामला पहाड़ियों से बढ़ने तथा वहाँ के वायु के स्पर्श से चित्त आह्लादित हो रहा था। हिमालय की सभी बिलासपुरियों को मैंने देखा है। मैं समझता हूँ, सौन्दर्य में सबकी रानी डलहौजी है, मसूरी का नंबर दूसरा होगा। मसूरी के देहरादून से दिखाई देने वाले पहाड़ प्रायः नंगे हैं, डलहौजी की पहाडियाँ चारों ओर से हरित वसना है और हरा रंग भी न जाने क्यों इतना निखरा-निखरा मालूम होता है।'[17] कहा जा सकता है कि डलहौजी की मुक्त प्रकृति मसूरी से बिल्कुल भिन्न है। डलहौजी की ठण्डी-ठण्डी एवं स्वच्छ समीर मन को आनंदित कर देती है। राहुल सांकृत्यायन ने अपने यात्रावृतों में प्रकृति वर्णन के समय में कहीं भी अतिश्योक्ति वर्णन नहीं किया उन्होंने जैसा देखा हुबहू उसका वर्णन वैसे ही किया तभी तो सिरमौर के रेणुका ताल का वर्णन कुछ इन शब्दों के साथ किया 'रेणुका ताल का घेरा तीन मील का है। एक तरफ छोटा-सा निकास छोड़कर चारों तरफ उँचे-उँचे पहाड़ खड़े हैं, जो सिर से पैर तक हरियाली से ढके हैं। ताल के इस छोर पर कुछ दली सरकंडों का जंगल सा दीख पड़ता है, जिससे जहाँ सरोवर की शोभा में बट्टा लगता है, वहां तैरने तथा नौका-विहार में भी दिक्कत होती है। मुझे प्रसन्नता हुई कि रेणुका ताल के सौन्दर्य के वर्णन में अतिश्योक्ति से काम नहीं किया गया।' कहा जा सकता है लेखक ने जहां रेणुका ताल के सौन्दर्य का वर्णन किया है वहीं उस ताल में उगे दलदली सरकंडो का भी वर्णन किया जो उसके सौन्दर्य को कम करते है। अतः लेखक ने हिमालय के सौन्दर्य को उसकी वास्तविकता के साथ वर्णित किया है।

हिमालय पर्वत वैसे तो अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण विश्व में अपनी अलग पहचान रखता है। परन्तु कुछ जगहों में मानव ने अपनी-सूझ-बूझ से इसको अलंकृत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और यह योगदान कश्मीर में अधिक देखा जा सकता है। कश्मीर में मुगल शासकों ने कई बाग-बगीचे बनाए जिसमें उन बगीचों का सौन्दर्यीकरण आधुनिक उपकरणों के द्वारा किया गया है जैसे कि बगीचों में मखमली घास उगवाना, रंग-बिरंगे फुव्वारों व सुगन्धित फूलों को उगाकर उन बगीचों का नए रूप से सौन्दर्यीकरण किया गया है। अन्त में कहा जा सकता है कि भले ही हिमालय अपने प्रकृति सौन्दर्य के लिए विख्यात हो परन्तु यहां के लोकमानव ने भी इसके सौन्दर्य को बनाए रखने में महत्वपूर्ण कदम उठाए। उन्होंने कई आधुनिक तकनीकों का प्रयोग कर इसके सौन्दर्य को और बढ़ाया है और उनका यह प्रयास काफी हद तक सफल भी रहा है।

<u>सन्दर्भ ग्रन्थ सूची</u>

1. https://hiwikipedia.org/wiki
2. Himalyan Studies Journal Vol.1, Institute of Integrated Himalya Studies, 398
3. राहुल सांकृत्यायन, तिब्बत में सवा वर्ष, पृ. 91
4. राहुल सांकृत्यायन, मेरी लद्दाख-यात्रा, पृ. 45-46
5. राहुल सांकृत्यायन, तिब्बत में सवा वर्ष, पृ. 260
6. राहुल सांकृत्यायन, हिमाचल भाग-1, पृ. 217-218
7. राहुल सांकृत्यायन, तिब्बत में सवा वर्ष, पृ. 6
8. राहुल सांकृत्यायन, तिब्बत में सवा वर्ष, पृ14
9. राहुल सांकृत्यायन, तिब्बत में सवा वर्ष, पृ. 37
10. राहुल सांकृत्यायन, तिब्बत में सवा वर्ष, पृ. 60
11. राहुल सांकृत्यायन, तिब्बत में सवा वर्ष, पृ. 72
12. राहुल सांकृत्यायन, हिमालच भाग-1, पृ. 3
13. राहुल सांकृत्यायन, किन्नर देश में, पृ. 263
14. राहुल सांकृत्यायन, किन्नर देश में, पृ. 187
15. राहुल सांकृत्यायन, किन्नर देश में, पृ. 184
16. राहुल सांकृत्यायन, हिमाचल भाग-2, पृ. 32
17. राहुल सांकृत्यायन, हिमाचल भाग-2, पृ. 61
18. राहुल सांकृत्यायन, हिमाचल भाग-2, पृ. 11

■

हिन्दी विभाग

एस.आर.एम. विश्वविद्यालय,

कट्टनकुलाथुर, चेन्नई (तमिलनाडु)

मो.न. 98164-96770

मेल : nisha.chauhan306@gmail.com

मानव-ऐक्य से ब्रह्म-ऐक्य का सफर : गुरु गोबिंद सिंह का काव्य

डॉ. शकुन्तला कालरा

मध्ययुगीन भारतीय साधना एवं सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाली सिक्ख गुरुओं की वाणी का अपना अलग महत्व है। दशम गुरु का दशम ग्रंथ समसामयिक धाराओं का केंद्रबिन्दु है। गुरु गोबंद सिंह भारतीय संस्कृति के महान उन्नायक हैं। उन्होंने इतिहास को नया मोड़ दिया। खालसापंथ से नए युग का सूत्रपात हुआ। गुरु गोबिंद सिंहजी का खालसा पंथ ऐसे मानवों की संख्या थी जिसमें जाति-भेद से परे निम्न समझी जाने वाली जातियां– नाई, छीपा, लोहार, मोची, ठठेरे आदि थीं। उनका व्यवसाय भी निम्न था जिसमें कुल, गोत्र किसी का भी महत्व न था। मानवीय मूल्यों की स्थापना ही खालसा-पंथ का प्रमुख उद्देश्य था।

सिक्खों के दसवें और अंतिम गुरु के रूप में समादृत गुरु गोबिन्द सिंहजी का व्यक्तित्व परस्पर विरोधी विशेषताओं का पुंज है। वह तलवार और कलम दोनों के धनी हैं और कुशल संगठनकर्त्ता के साथ प्रतिभाशाली कवि भी। माछीवाड़े विच बैठा, शहंशाह जहान दा/ हथ विच खंडा पिछे, ढासणा कमान दा। यह कैसे संत हैं जिनका स्वरूप सिपाही वाला है। हाथ में तीर और तलवार है। श्री गुरु गोबिंद सिंह पहले महापुरुष थे जिन्होंने भारतवर्ष में विशुद्ध हिंदू राष्ट्र की स्थापना हेतु न केवल घोषणा की बल्कि स्वयं आयुपर्यंत उसके लिए संघर्षशील रहे। नैणा देवी के शक्तिपीठ में जाकर उन्होंने उद्‌घोष किया- सकल देश में खालसा पंथ गाजै, जगे धर्म हिंदू सभै द्वंद्व भाजै।

गुरु गोबिंद सिंह का काल राजनीतिक दृष्टि से ओरंगजेब का ही काल था। कट्टरपंथी होने के कारण ओरंगजेब ऐसे इस्लामी राज्य की स्थापना करना चाहता था जिसमें गैर-मुस्लिम कोई न हो। ओरंगजेब के गद्दी पर बैठते ही भारतीय संस्कृति की एकात्मकता के द्वारा की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई थी। गैर-मुस्लिम जातियों के प्रति जेहाद खड़ा कर अपने धर्म के काजियों तथा उलेमान को प्रसन्न करना उसने अपना ध्येय बना लिया था। ओरंगजेग ने हर क्षेत्र में हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए अलग-अलग कानून लागू किए। ओरंगजेब की धर्मांधता तब अपनी चरमसीमा पर पहुंचती दिखाई देती है जब वह हिन्दुओं को धर्म परिवर्तित करने के लिए बाध्य करता दिखाई देता है। इसके लिए हिन्दुओं को असह्य यातना दी जाने लगी। उनके धार्मिक स्थानों को अपवित्र किया जा रहा था। उन्हें तलवार की नोंक पर मुसलमान बनने के लिए मजबूर किया जाने लगा।

मानवता के इतिहास में ऐसे पुरुष कम होते हैं जो इतिहास की समग्र चेतना को आत्मसात् करते हुए भी इतिहास की दिशा बदल देते हैं। वे परस्पर विरोधी दिखने वाली प्रवृत्तियों में से समाज के लिए नवीन मार्ग का अन्वेषण करते हैं। ऐसे ही राष्ट्रसंत, शौर्य-

पुंज एवं लोकचेतना के गायक गुरु गोबिंद सिंह जी थे। उनके विषय में हजारीप्रसाद द्विवेदी (सिक्ख गुरुओं का पुण्य स्मरण) का कथन है–'बड़े सौभाग्य से देश को ऐसा लोकनायक प्राप्त होता है। भारतवर्ष ऐसा ही गौरवशाली देश है, जिसने गुरु गोबिन्द सिंह जैसे सच्चे वीर को जन्म दिया। पवित्र चरित्र, अडिग उत्साह, अकुण्ठ साहस, अकृत्रिम औदार्य, अकुतोमय मनोबल, दीन-दुखियों का निश्चित सहाय, अत्याचार का असंदिग्ध प्रतिरोध, विद्या और तपस्या का नियत संरक्षण और मनोबल का अक्षय भंडार ही वीर है। गुरु गोबिंद सिंह इन सब गुणों के मूर्तिमान रूप थे।' गुरु गोबिंद सिंह का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वह एक सहृदय कवि और अदम्य योद्धा होने के साथ-साथ प्रखर मनीषी थे।' डॉ. महीपसिंह के अनुसार- 'गुरु गोबिंद सिंह का युग इतिहास के विषमतम् युगों में से था और वे विषमतम् युग की अन्यतम उपज थे। उनके व्यक्तित्व में एक कवि, भाषाविद् राष्ट्र-निर्माता, योद्धा, क्रांतिकारी तथा आध्यात्मिक एवं लौकिक गुणों का अद्‌भुत सामंजस्य था। यह सामंजस्य ही उन्हें भारतीयों का सबसे अधिक रोचक व्यक्तित्व बना देता है। डॉ. महीपसिंह की पुस्तक के आमुख में लिखे ये विचार गुरु गोबिंद सिंह जी के बहु-आयामी व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। एक ओर वे युद्धरत सैनिक हैं तो दूसरी ओर कलम के सिपाही। रहीम की तरह कलम और तलवार दोनों उनके हथियार हैं, जिनके द्वारा वह मानव-धर्म की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। उनका सारा जीवन मानवता के लिए सर्मपित रहा है। उन्होंने प्रत्येक मनुष्य को समान दृष्टि से देखा। उनका मत है कि संसार के सभी लोग एक ही जाति के लोग हैं। उनकी दृष्टि में हिन्दू, तुर्क एक ही मनुष्य की जात है। नानक की भांति वह मानते हैं कि सभी जीव उसी एक परमात्मा का स्वरूप हैं। गुरु गोबिंद सिंह जी का युग वह था जहां ईश्वर और खुदा के प्रतिद्वन्द्वी एक दूसरे को अपना ही प्रतिद्वन्द्वी समझते थे। उन्होंने दोनों में वैर-वैमनस्य को दूर कर धार्मिक सहिष्णुता का संदेश दिया।

हिन्दु तुरक कोऊ राफ जी इमाम शाफी
मानस की जात सबै एकै पहचानबो।
करता करीम सोई राजक रही ओई
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो।
एक की सेव सभ ही की गुरु देव एक
एक ही सरूप सबै एकै जाति जानबो।[2]

गुरु गोबिंद सिंह जी को गुरु नानक जी से मानवतावादी चेतना विरासत में मिली थी। गुरु नानक ने मानव के सहज धर्म में आस्था और विश्वास को व्यक्त किया था तथा हिन्दू-मुसलमान सबको एक ही ब्रह्म का अंश मानकर मानवतावाद का प्रचार किया था। गुरु गोबिंद सिंह ने भी मानव धर्म को सर्वोपरि मानते हुए गुरु नानक की इस विचारधारा– 'न को हिन्दू न को मुसलमान' एवं 'न को बैरी न बेगाना' को पूर्णरूपेण ग्रहण किया। धर्म, जाति, कुल, गोत्र से परे मानव ऐक्य का समर्थन किया। विचित्र नाटक में गुरु गोबिंद सिंह स्पष्ट कहते हैं कि उनका जन्म धर्म की स्थापना के लिए हुआ है और धर्म से उनका तात्पर्य मजहब से न होकर मानव धर्म से है–

इह कारनि प्रभु मोहि पठायो
तब मैं जगत जनम धर आयो।
जिमि तिन कहीं तिने तिमि कहिहौं
और किसू ते बैर न गहिहौं।[3]

उनका धर्म ऐसा मानव धर्म है जिसमें मानव को मानव की भांति रहने के अधिकार को महत्व प्राप्त है जो मानव को मानव ही नहीं समझता जाति, धर्म के आधार पर भेदभावपूर्ण रवैया अपनाता है वह गुरु गोबिंद सिंह की दृष्टि में अधर्मी है।

गुरु बोबिंद सिंह ने इस मानवतावादी के सिद्धांत को अपने जीवन में उतारकर एक आदर्श प्रस्तुत किया। उनका पूरा जीवन मानवता के लिए सर्मपित रहा। प्रत्येक मनुष्य को समान दृष्टि से देखा। संसार के सभी लोग एक ही मानवता के अंग हैं। उनके मन में किसी के लिए कोई भेदभाव नहीं। क्योंकि सभी का निर्माण एक ही ज्योति से हुआ है। गुरु गोबिंद सिंह ने जनसामान्य को बार-बार यही समझाया है कि जाति-भेद मनुष्य द्वारा बनाया गया है। ऊंची जाति वालों ने ही यह भेद बनाया है। सबकी शारीरिक रचना एक है। इतना ही नहीं वह पुराण-कुरान दोनों में एक ही सत्य की अभिव्यक्ति मानते हैं। हिन्दुओं

की पूजा, मुसलमानों की नमाज दोनों ही उस मालिक की बंदगी के साधन हैं। द्वार अलग-अलग हैं, गंतव्य एक है। हिंदुओं के देवस्थल मंदिर और मुसलमानों की मस्जिद में कोई अंतर नहीं मानते। अन्तर करने वाले भ्रम फैलाते हैं–

देहुरा मसीत सोई पूजा और निवाज ओई
मानस सभै एक पै अनेक को भ्रमाउ है।
देवता अदैव जछ गंध्रव तुरक हिंदू
निआरे- निआरे देसन के भेस को प्रभाउ है।
एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान
खाक बाद आतस और आब को रलाउ है।
अलह अभेख सोई पुरान औ कुरान ओई
एक ही सरूप सभै एक ही बनाऊ है।[4]

मानवतावाद के संपोषक गुरु गोबिंद सिंह जी हर मनुष्य को ईश्वर का ही प्रतिरूप ही मानते हैं। उनकी दृष्टि में जाति-पाति का भेद मनुष्यों द्वारा बनाया गया है। डॉ. हुकुमचंद राजपाल के अनुसार-- 'गुरु गोबिंद सिंह जी ने अपने सामाजिक दायित्व का निर्वाह सम्यक् रूप से किया तथा सामाजिक नैतिकता को दृष्टि में रखते हुए समाज में व्याप्त जातियता की भावना और परस्पर वैषम्य उंच-नीच की धारणा का अपने व्यवहार के धरातल पर खण्डन किया।'5 सहिष्णुता की भावना की पोषक इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि वे मानव ऐक्य के पक्षधर थे। 'एकोअहं बहुस्यामि' अर्थात् समस्त सृष्टि एक ही चैतन्य शक्ति का प्रसार है। वेदों की यही विचारधारा गुरुगोबिन्द सिंह जी के मानवतावाद का मूल आधार है। हिन्दू-मूस्लिम ही नहीं सभी धर्म-मतों में समन्वय स्थापित करने की दृष्टि से अन्य सिक्ख-गुरुओं की भांति गुरु गोबिंद सिंह ने भी अपनी लेखनी से सराहनीय प्रयास किए। हिंदी, पंजाबी, फारसी आदि भाषाओं के ज्ञाता एवं संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित, विद्वान गुरु गोबिंद सिंह जी का साहित्य-सृजन तीनों भाषाओं में मिलता है। दशम-ग्रंथ में संकलित गुरु गोबिंद सिंह जी की सभी रचनाएं गुरुमुखी लिपि में हैं। ये रचनाएं- जापु, अकालउसतुति, विचित्र नाटक, चण्डी-चरित्र, चण्डी-चरित्र द्वितीय, वार भगउती जी की (चण्डी दी वार), ज्ञानप्रबोध, चौबीस अवतार, महंदी मीर, ब्रह्मावतार, रुद्रावतार, स्फुट सवैये, शस्त्रनाममाला, चरित्रोपाख्यान, जफरनामा, फारसी में लिखी हिकायतें।

एक हजार चार सौ अट्ठाइस पृष्ठों में सिमटी उपर्युक्त सामग्री का कुछ अंश (चण्डी दी वार) पंजाबी भाषा में है और जफरनामा तथा हिकायतें आदि कुछ फारसी में हैं। पचास पृष्ठों की इन तीन रचनाओं के अतिरिक्त शेष रचनाएं हिन्दी भाषा की हैं। गुरु गोबिंद सिंह जी का समस्त काव्य न केवल मानव-ऐक्य का काव्य है वरन् ब्रह्म अथवा ईश्वर एक्य का भी अद्‌भुत समन्वय है। गुरु गोबिंद सिंह जी मध्यकालीन साहित्य धारा के उस युग के कवि हैं जो धर्म और संस्कृति-प्रधान है। उन्होंने इस युग के विभिन्न हिंदू शक्तियों का भी समन्वय किया। शैवों, शाक्तों, वैष्णवों द्वारा रचित साहित्य का अनुवाद किया है। पौराणिक कथानकों के माध्यम से सामयिक जीवन को चित्रित किया। भारतीय धर्मग्रंथों में वर्णित लगभग सभी अवतारों का चित्रण किया है। सिक्ख गुरुओं ने अवतारों को अधिक महत्व नहीं दिया। मध्यकालीन भारतीय संतों, विशेषतः निर्गुण काव्य की ज्ञानाश्रयी शाखा के संतों की भांति नानक-पंथ भी निराकर ईश्वर का उपासक है। सिक्ख-मत अद्वैतवाद का समर्थक है। अद्वैत के अनुसार ब्रह्म की सत्ता ही सत्य है। भारतीय चिंतन परंपरा के ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनों रूप गोबिंद सिंह को मान्य है। मध्यकालीन भक्तों ने ब्रह्म के दो रूप स्वीकार किए निर्गुण-निराकार और दूसरा सगुण-साकार जो अवतारों की परम्परा का है। अगुन, अरूप, अलख अजही भक्तों के प्रेमवश, संतों के कल्याण के लिए पृथ्वी पर अवतरित होता है। सिक्ख मत में यद्यपि ईश्वर को प्रथम रूप में प्रतिष्ठित किया गया। किंतु उसके संत प्रतिपालक एवं दुष्टदलनकर्त्ता रूप की आवश्यकता को भी समझा। गुरु गोबिंद सिंह के पूर्ववर्ती सिक्ख संतों ने इसका अनेकशः वर्णन किया है–

हरि जुग-जुग भगत उपाइआ पैज रखदा
आइया राम राजे, हरणाखसु दुसटु हरि मारिया,
प्रहलाद, तराइया राम राजे।[6]

गुरु गोबिंद सिंह को ईश्वर के दोनों रूप मान्य हैं। अकाल उसतुति में गुरु गोबिंद सिंह जी ने ब्रह्म के दोनों रूपों की वंदना की है। अकाल के निर्गुण स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

अनखंड, अतुल प्रताप, सब थापियो जिहीथाप।
अनखेद, भेद अछेद, मुख चार गावन वेद।।[7]

वह जन्म-मरण से परे हैं। उसका न आदि है न अंत न मध्य। उसके स्वरूप को कोई नहीं समझ पाया-

आदि अंत न मध्य जाको भूत भव्ये भवान
सत्य द्वापुर तृतिय कलियुग चतुरकाल प्रधान
ध्याया ध्याय थके महामुनि गाय गंधर्व अपार
हार-हाय थके सबै नहीं पाईऐ तिहपारं।[8]

न वर्ण है न जाति न उसका कोई संबंधी है। जल-थल सबमें उसका वास है। न उसका कोई शत्रु है न मित्र–

वरण चिह्न जिह जान न पाता
सत्रमित्र जिह तात न भ्राता।
सबने दूरि सभन ते नेरा
जल थल नहीं अल जाहि बसेरा।[9]

वे निराकार परमात्मा के अनेक गुणों का भी वर्णन करते हैं। उनके अगम, अगोचर ईश्वर निष्क्रिय नहीं, वह भक्तों और संतों के कष्टों का निवारण करते हैं। कबीर, दादू आदि संतों की भांति वे प्रभु को निराकार मानते हैं, किंतु निर्गुण नहीं। जब-जब दुष्टों का आतंक बढ़ता है, तब-तब वे देह धारण करते हैं–

जब-जब होत अरिष्ट अपारा
तब-तब देह धरत अवतारा।[10]

ध्यातव्य है कि यहां गुरु गोबिंद सिंह जी की अवतार भावना मध्ययुगीन सगुण-भक्तों से प्रभावित होकर नहीं वरन् युग की आवश्यकता से प्रेरित है। इनके द्वारा वह आततायियों के अत्याचारों से त्रस्त जनता में विश्वास बनाए रखना चाहते थे कि हर अत्याचार का अंत होता है ताकि वह निरुत्साहित न हो सके। गुरु गोबिंद सिंह जी द्वारा रचित 'चौबीस अवतार' में विष्णु के चौबीस अवतारों, ब्रह्म के सात (बाल्मीकि, कश्यप, शुक्र, बृहस्पति, व्यास, षटऋषि, कालिदास) व रुद्र के दो अवतारों (दत्त्रेय व परसनाथ) का विभिन्न छंदों में किया है। रामावतार और कृष्णावतार का वर्णन अत्यंत विस्तार से किया है। अतः कहा जा सकता है कि गुरु गोबिंद सिंह जी उभयविद् विचारधारा के समर्थक हैं। ब्रह्म को निर्गुण के साथ-साथ सगुण कहकर संबोधित करते हैं–

कहूं त्रिगुण अतीत कहुं सुरगुन समेत हों।[11]

एक और निर्गुण भक्तों की भांति वे अपने इष्ट को रूप-रेख, भेष, रंग से रहित कहते हैं–

न रागं न रंग न रूपं न रेखं
अभूत अभेष है बली अरूप राग रंग है।[12]

दूसरी ओर सगुण भक्तों की भांति कहते हैं– वह कहीं साधक है, कहीं योगी है, वृंदावन में गउओं को चराने वाला और वंशी बजाने वाले हैं–

कहूं बेन के बजैया कहीं धेनु के चरैया।

उसका वर्णन करके संत, योगी, भक्त सभी हार गए पर उसका सही-सही वर्णन करने में कोई भी समर्थ नहीं हो पाया। इसलिए सभी ने उसे अंत में अकथनीय और वर्णनातीत कह दिया। यही असमर्थता गुरु गोबिंद सिंह जी की है। वाणी की देवी सरस्वती बोलने लगें और गणेश जी लिखने लगें तो भी उनके गुणों का बखान नहीं हो सकता-

सरसुती बकता करिके जुगि कोटि गनेसिके हाथ लिखहों।[13]

वह सत्ता व्यापक है। जल-थल, दिशा-विदिशा सर्वत्र उसी सत्ता का प्रसार है–

आदि पुरख अबिगति अबिनासी।
लोक चतुर्दस जोति प्रकासी।[14]

सगुण-भक्तों की तरह भगवान के नाम, रूप गुण, लीला, धाम आदि का भी वर्णन करते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त नाम निर्गुणवाची भी है और सगुणवाची भी उन्होंने निरंजन, अव्यक्त, अच्युत आदि निराकार ब्रह्म के विशेषणों के साथ सगुण-विषयक नामों का उल्लेख भी किया। इन नामों में प्रणव, भगवान, श्रीपति, हरि, गोविंद, मुकंद आदि कुछ नाम हिंदू देवताओं के और कुछ रहीम, करीम अल्लाह आदि इस्लामी परम्परा के हैं। सिक्ख-परम्परा के विशिष्ट नाम अकाल पुरुष, सत्यनाम, वाहिगुरु, निरंकार आदि का प्रचुर प्रयोग किया है। नाम की भांति रूप का वर्णन भी अनेकशः किया है–

विशाल लाल लोचनं मनोज मान मोचनं
सुमंत सीस सुप्रभा चक्रत चारु चन्द्रका।[15]

आराध्य का यह रूप-वर्णन रामभक्त तुलसीदास की भांति है, जहां वे राम के लिए 'कोटि मनोज लजावन-हारे' कहते हैं इसी प्रकार का साम्य अन्यत्र भी है जहां तुलसीदास राम के रूप वर् में सिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु कहते हैं। गुरु गोबिंद सिंह जी भी अपने इष्टदेव का वर्णन करते हुए यही कहते हैं- सिरं किरीटं धारीयं।[16] वह सृष्टि का रचयिता, पालक और नाशक हैं। भक्तवत्सल है–

हाथी की पुकार पल पाछै पहुंचत ताहि
चींटी का चिंघार पहले सुनीअत है।[17]

रूपवान, गुणनिधान परमात्मा बड़ा कौतुकी भी है। वह विविध लीलाएं करता है। सृष्टि-रचना उसका प्रिय खेल है। परमात्मा की लीला का वर्णन अन्य सिख गुरुओं की भांति गुरु गोबिंद सिंहजी ने भी किया है। सृष्टि-रचना के खेल में माया उसकी हर आज्ञा का पालन करती है। जन्म-मृत्यु, निर्माण-विनाश, अच्छाई-बुराई सब उसका बनाया खेल है जिसे खेलने में आनंद आता है। सब कुछ करते हुए भी वह हर लीला में स्वयं असंग बना रहता है–

काल आपुनो नाम छपाई, अवरन के सिर दे बुरिआई
आपन रहत निरालम जगते, जान लिए जा नामै तबते।[18]

इस प्रकार भक्तों की भांति गुरु गोबिंद सिंह जी ने भी अपने अकाल पुरुष को सगुणवत् चित्रित किया है। पूरी सृष्टि उसका ही प्रतिरूप है। वह विराट रूप है–

सहसराछ, जाके सुभ सोहे,
सहस पाद जाके तन मोहे।[19]

उसके सगुण-निर्गुण रूप का वर्णन करते हुए अंत में यही कह देते हैं–

नहीं जान जाई कछु रूप रेखं
कहा बास ताको फिरै कऊन भेखं
कहा नाम ताको कहा कै कहावै
कहा कै बखानो कहै मैं न आवे।[20]

वह न्यारा है। उसका भेद कोई नहीं जान पाता-

पिता जनम जिम पूत न पावै
कहा तवन का भेद बतावें।[21]

पौराणिक अवतार-भावना की भांति गुरु गोबिंद सिंह जी भी मानते हैं कि अपने परमधाम में अगुण, अखंड, अरूप, अज निराकार रूप में विराजमान ईश्वर ही भक्तों के लिए विविध रूप धारण करता है। 'काल' विष्णु को अवतार धारण करने की आज्ञा देता है। वह जन-कल्याणार्थ अवतरित होता है।

इस प्रकार मानव-धर्म के प्रतिष्ठापक गुरु गोबिंद सिंह जी की कविता समन्वय की उदात्त भावना से अनुप्राणित है। इसी आधार पर संभवतः डॉ. ओमप्रकाश ने लिखा है– 'पूर्व-मध्यकाल में (भक्तिकाल में) जो स्थान तुलसीदास का है, वही महत्व उत्तर-मध्यकाल में गुरु गोबिंद सिंह का है।'

रेफरेंस

1. गुरु गोबिंद सिंह जीवन और आदर्श, डॉ. महीपसिंह
2. दशम ग्रंथ, गुरु गोबिंद सिंह, पृ.19 (संस्करण 2013), विक्रमी)
3. दशम ग्रंथ, गुरु गोबिंद सिंहविचित्र नाटक, गुरु गोबिंद सिंह 6/42, 6/31
4. दशम ग्रंथ, गुरु गोबिंद सिंह, पृ.19
5. गुरु गोबिंद सिंह की नैतिक मान्यताएं, डॉ. हुकमचंद राजपाल, पृ. 89
6. आसा महला 4, पृ. 45
7. अकाल उसतुति, गुरु गोबिंद सिंह 34,
8. अकाल उसतुति, गुरु गोबिंद सिंह 199
9. अकाल उसतुति, गुरु गोबिंद सिंह 4
10. दशम ग्रंथ, गुरु गोबिंद सिंह पृ. 155
11. अकाल उसतुति, गुरु गोबिंद सिंह 12
12. दशम ग्रंथ, गुरु गोबिंद सिंह, पृ. 27
12. दशम ग्रंथ, गुरु गोबिंद सिंह, पृ. 46
13. दशम ग्रंथ, गुरु गोबिंद सिंह, पृ. 11
14. दशम ग्रंथ, गुरु गोबिंद सिंह, पृ. 11
15. अकाल अस्तुति, दशम ग्रंथ पृ. 128
16. अकाल अस्तुति, दशम ग्रंथ पृ. 128
17. अकाल अस्तुति, दशम ग्रंथ पृ. 36
18. अकाल अस्तुति, दशम ग्रंथ पृ. 156
19. अकाल अस्तुति, दशम ग्रंथ पृ. 47
20. अकाल अस्तुति, दशम ग्रंथ पृ. 20
21. अकाल अस्तुति, दशम ग्रंथ पृ. 47

■

- एन. डी. 57, पीतमपुरा, दिल्ली-110034
मो. 9868735123

'या कुन्देन्दु तुषारहार धवला या शुभ्रवस्त्रावृता'

भारत त्योहारों का देश है। इसी शृंखला में बसंत पंचमी अथवा श्रीपंचमी एक हिन्दू त्योहार है। इस दिन विशेष रूप से विद्या की देवी सरस्वतीजी की पूजा की जाने की भारतीय संस्कृति की परम्परा है। इस दिन महिलायें पीले वस्त्र धारण करती हैं। यह त्यौहार भारत का ही नहीं अपितु बांग्लादेश, नेपाल आदि देशों में बड़ी श्रद्धा-आस्था से मनाये जाने की परम्परा है।

भारत तथा नेपाल में वर्ष भर को छः ऋतुओं में विभाजित किया गया है उनमें बसंत अधिकांश लोगों का सबसे प्रिय मौसम है। बसंत में चारो तरफ फूलों की बहार देखने का अवसर होता है, खेतों में पीली-पीली सरसों का सोना बरसने-चमकने लगता है, जौ एवं गेहूं की बालियां पूरे यौवन पर रहती है। आमों के पेड़ों पर बौर दिखाई देने लगते हैं तो दूसरी तरफ रंग बिरंगी तितलियां फूलों पर अठखेलियां करती दृष्टिगोचर होने लगती हैं। बसंत पंचमी माघ महिने के शुक्ल पक्ष के पांचवें दिवस मनाई जाती हैं। इस दिन भगवान विष्णु, कामदेव और माता सरस्वती की धूमधाम से अर्चना वंदना की जाती है। भारत में अधिकांश शिवाविद् इस दिन माँ शारदे की वंदना कर अधिक ज्ञानवान होने की प्रार्थना करते हैं। बसंत में प्रकृति प्रसन्न होकर खिल उठती है। मानव ही नहीं अपितु पशु-पक्षी चहक उठते हैं। बसंत पंचमी एक तरह से कलाकारों, लेखक, गायक, नृत्यकार, कवि, वादक और संगीतज्ञों की दिवाली जैसा त्योहार है, क्योंकि ये सब इसी दिन अपने उपकरणों की पूजा करते हैं। बसंत पंचमी एवं पौराणिक कथा ऐसा पुराणों में उल्लेख है कि ब्रह्माणी ने भगवान विष्णु की आज्ञा से सृष्टि रचना के साथ ही मनुष्य योनि की रचना की है। मनुष्य की रचना के पश्चात् चारों ओर मौन दिखाई पड़ा तथा ब्रह्माणी ने विष्णु की स्वीकृति से जल छिड़का जिससे पृथ्वी पर जलकण गिरते ही कम्पन होने लगा तथा वृक्षों के मध्य एक अद्भुत शक्ति प्रकट हुई। इस प्राकट्य में चतुर्भुजी सुन्दर स्त्री एक हाथ में वीणा तथा दूसरा हाथ वर मुद्रा में था, शेष दो हाथों में ग्रंथ एवं माला सुशोभित थी। ब्रह्मा ने देवी से वीणा बजाने का अनुरोध किया। बस जैसे ही वीणा का मधुर नाद हुआ सृष्टि के समस्त प्राणियों को वाणी प्राप्त हो गई। ब्रह्माजी ने इस देवी को सरस्वती कहा। संगीत की देवी भी यही है। वसंतपंचमी माता सरस्वती का जन्म दिवस त्यौहार है। ऋग्वेद में सरस्वती

(भगवती) का वर्णन है तथा बताया गया है–

प्रणो देवी सरस्वती वाजेभिर्वजिनीवती
धीनामणित्रयवस्तु।

तात्पर्य यह है कि ये श्रेष्ठ चेतना सरस्वती मानव बुद्धि-प्रज्ञा एवं मनोवृत्तियों की रक्षक है। सरस्वती उत्तम आचरण मेधा, और समृद्धि की देवी है। बसंत पंचमी की पूजा भगवान श्रीकृष्ण का उनकी प्रसन्नता पर दिया गया वरदान है।

बसंत पंचमी त्रेतायुग की देन है। श्रीराम सीताहरण के बाद रावण की खोज में दक्षिण में गये। खोज में दण्डकारण्य भी गये थे। इस वन में शबरी की कुटिया में श्रीराम पधारे। शबरी ने श्रीराम को चख-चखकर मीठे बेर भेंट किये। दण्डकारण्य वन वर्तमान में गुजरात और मध्यप्रदेश में माना जाता है। डांग गुजरात का एक जिला है। यहां आज भी शबरी का आश्रम है। ऐसा माना गया है कि श्रीराम बसंत पंचमी को ही यहां आये थे। अतः आज भी राम जिस शिला पर बैठे थे उसकी पूजा आज के दिन होती है। यहां शबरी माता का मंदिर भी है।

इस दिन माँ सरस्वती की पूजा रोली, पीले फूल, गुलाल, पीली मिठाई एवं आम की मंजरी से करना चाहिये। परम्परानुसार छात्र-छात्राओं को माता सरस्वती का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए अपनी पाठ्यपुस्तकों को सरस्वती माँ की मूर्ति या चित्र के सामने रख देना चाहिये। इस दिन अध्ययन-अध्यापन कार्य नहीं करना चाहिये। विधि-विधान से पूजा उपरान्त उस दिन पुस्तकों को माता का आशीर्वाद मानकर मूर्ति के आगे से पुस्तकें, पेन, कलम आदि उठा लेना चाहिये। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य कवि महाप्राण श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का जन्म बसन्त पंचमी के दिन ही हुआ था। उनके द्वारा रचित सरस्वती वंदना का आज भी विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में सस्वर गायन किया जाता है- 'वर दे वीणा वादिनी वर दे।' विद्वानों द्वारा माता सरस्वती के अन्य नाम भी बताये गये हैं यथा शारदा, जगती, वरदायिनी, भुवनेश्वरी, चन्द्रकांति, बुद्धिदात्री, बहुचारिणी, हंसवाहिनी, ब्रह्मचारिणी, भारती, भगवती, वीणावादिनी, वाग्देवी एवं बागीश्वरी। कई घरों में छोटे बालक को विद्यारंभ का श्रीगणेश सरस्वती पूजन से किया जाता है। स्लेट पर स्वस्तिक बनाकर बालक के दाहिने हाथ से 'ग' गणेश का बनवाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि इस प्रकार की पूजन विधि से बालक का शिक्षा के प्रति रुझान बढ़ता है और वह उन्नति की ओर अग्रसर होता है।

■ ***नरेंद्र कुमार मेहता***
103, व्यास नगर, ऋषिनगर विस्तार
उज्जैन (म.प्र.) 456010

श्री हनुमान चालीसा में 40 चौपाइयां

कई लोगों की दिनचर्या हनुमान चालीसा पढ़ने से शुरू होती है। पर क्या आप जानते हैं कि श्री हनुमान चालीसा में 40 चौपाइयां हैं, ये उस क्रम में लिखी गई हैं जो एक आम आदमी की जिंदगी का क्रम होता है।

माना जाता है तुलसीदास ने चालीसा की रचना बचपन में की थी। हनुमान को गुरु बनाकर उन्होंने राम को पाने की शुरुआत की। अगर आप सिर्फ हनुमान चालीसा पढ़ रहे हैं तो यह आपको भीतरी शक्ति तो दे रही है लेकिन अगर आप इसके अर्थ में छिपे जिंदगी के सूत्र समझ लें तो आपको जीवन के हर क्षेत्र में सफलता दिला सकते हैं। हनुमान चालीसा सनातन परम्परा में लिखी गई पहली चालीसा है। शेष सभी चालीसाएं इसके बाद ही लिखी गई। हनुमान चालीसा की शुरुआत से अंत तक सफलता के कई सूत्र हैं। आइए जानते हैं हनुमान चालीसा से आप अपने जीवन में क्या-क्या बदलाव ला सकते हैं– शुरुआत गुरु से....

हनुमान चालीसा की शुरुआत गुरु से हुई है...

श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मनु मुकुरु सुधारि।

अर्थ- अपने गुरु के चरणों की धूल से अपने

मन के दर्पण को साफ करता हूं। गुरु का महत्व चालीसा की पहले दोहे की पहली लाइन में लिखा गया है। जीवन में गुरु नहीं है तो आपको कोई आगे नहीं बढ़ा सकता। गुरु ही आपको सही रास्ता दिखा सकते हैं। इसलिए तुलसीदास ने लिखा है कि गुरु के चरणों की धूल से मन के दर्पण को साफ करता हूं। आज के दौर में गुरु हमारा मेंटोर भी हो सकता है, बॉस भी। माता-पिता को पहला गुरु ही कहा गया है। समझने वाली बात ये है कि गुरु यानी अपने से बड़ों का सम्मान करना जरूरी है। अगर तरक्की की राह पर आगे बढ़ने है तो विनम्रता के साथ बड़ों का सम्मान करें।

ड्रेसअप का रखें ख्याल....

चालीसा की चौपाई है-

कंचन बरन बिराज सुबेसा, कानन कुंडल कुंचित केसा।

अर्थ- आपके शरीर का रंग सोने की तरह चमकीला है, सुवेष यानी अच्छे वस्त्र पहने हैं, कानों में कुंडल हैं और बाल संवरे हुए हैं। आज के दौर में आपकी तरक्की इस बात पर भी निर्भर करती है कि आप रहते और दिखते कैसे हैं। फर्स्ट इंप्रेशन अच्छा होना चाहिए। अगर आप बहुत गुणवान भी हैं लेकिन अच्छे से नहीं रहते हैं तो ये बात आपके कैरियर को प्रभावित कर सकती है। इसलिए, रहन-सहन और ड्रेसअप हमेशा अच्छा रखें।

आगे पढ़ें- हनुमान चालीसा में छिपे मैनेजमेंट के सूत्र– *सिर्फ डिग्री काम नहीं आती,*

विद्यावान गुनी अति चातुर,
रामकाज करिबे को आतुर।

अर्थ- आप विद्यावान हैं, गुणों की खान हैं, चतुर भी हैं। राम के काम करने के लिए सदैव आतुर रहते हैं।

आज के दौर में एक अच्छी डिग्री होना बहुत जरूरी है। लेकिन चालीसा कहती है सिर्फ डिग्री होने से आप सफल नहीं होंगे। विद्या हासिल करने के साथ आपको अपने गुणों को भी बढ़ाना पड़ेगा, बुद्धि में चतुराई भी लानी होगी। हनुमान में तीनों गुण हैं, वे सूर्य के शिष्य हैं, गुणी भी हैं और चतुर भी।

अच्छा लिसनर बनें-

प्रभु चरित सुनिबे को रसिया, राम लखन सीता मनबसिया।

अर्थ- आप राम चरित यानी राम की कथा सुनने में रसिक हैं, राम, लक्ष्मण और सीता तीनों ही आपके मन में वास करते हैं।

जो आपकी प्रायोरिटी है, जो आपका काम है, उसे लेकर सिर्फ बोलने में नहीं, सुनने में भी आपको रस आना चाहिए। अच्छा श्रोता होना बहुत जरूरी है। अगर आपके पास सुनने की कला नहीं है तो आप कभी अच्छे लीडर नहीं बन सकते। कहां, कैसे व्यवहार करना है ये ज्ञान जरूरी है।

सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा, बिकट रुप धरि लंक जरावा।

अर्थ- आपने असोक वाटिका में सीता को अपने छोटे रूप में दरशन दिए। और लंका जलाते समय आपने बड़ा स्वरूप धारण किया।

कब, कहां, किस परिस्थिति में खुद का व्यवहार कैसा रखना है, ये कला हनुमानजी से सीखी जा सकती है।

सीता से जब अशोक वाटिका में मिले तो उनके सामने छोटे वानर के आकार में मिले, वहीं जब लंका जलाई तो पर्वताकार रुप धर लिया।

अक्सर लोग ये ही तय नहीं कर पाते हैं कि उन्हें कब किसके सामने कैसा दिखना है।

अच्छे सलाहकार बनें-

तुम्हरो मंत्र बिभीसन माना, लंकेस्वर भए सब जग जाना।

अर्थ- विभीषण ने आपकी सलाह मानी, वे लंका के राजा बने ये सारी दुनिया जानती है।

हनुमान सीता की खोज में लंका गए तो वहां विभीषण से मिले। विभीषण को राम भक्त के रूप में देखकर उन्हें राम से मिलने की सलाह दे दी।

विभीषण ने भी उस सलाह को माना और रावण के मरने के बाद वे राम द्वारा लंका के राजा बनाए गए। किसको, कहां, क्या सलाह देनी चाहिए, इसकी

समझ बहुत आवश्यक है। सही समय पर सही इंसान को दी गई सलाह सिर्फ उसका ही फायदा नहीं करती, आपको भी कहीं ना कहीं फायदा पहुंचाती है।

आत्मविश्वास की कमी ना हो-

प्रभु मुद्रिका मेलि मुख माही, जलधि लांघि गए अचरज नाहीं।

अर्थ- राम नाम की अंगुठी अपने मुख में रखकर आपने समुद्र को लांघ लिया, इसमें कोई अजरज नहीं है। अगर आपमें खुद पर और अपने परमात्मा पर पूरा भरोसा है तो आप कोई भी मुश्किल से मुश्किल टॉस्क को आसानी से पूरा कर सकते हैं। आज के युवाओं में एक कमी ये भी है कि उनका भरोसा बहुत जल्दी टूट जाता है। आत्मविश्वास की की भी बहुत है। प्रतिस्पर्धा के दौर में आत्मविश्वास की कमी होना खतरनाक है। अपने आप पर पूरा भरोसा रखें।

■ ***शंकरलाल सोमानी, कोलकाता***

महाराजा विक्रमादित्य के नौरत्न

अकबर के नौरत्नों से इतिहास भर दिया, पर महाराजा विक्रमादित्य के नवरत्नों की कोई चर्चा पाठ्यपुस्तकों में नहीं है! जबकि सत्य यह है कि अकबर को महान सिद्ध करने के लिए महाराजा विक्रमादित्य की नकल करके कुछ गलत लोगों ने इतिहास में लिख दिया कि अकबर के भी नौ रत्न थे। राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों को जानने का प्रयास करते हैं– राजा विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों के विषय में बहुत कुछ पढ़ा-देखा जाता है। लेकिन बहुत ही कम लोग ये जानते हैं कि आखिर ये नवरत्न थे कौन-कौन। राजा विक्रमादित्य के दरबार में मौजूद नवरत्नों में उच्च कोटि के कवि, विद्वान, गायक और गणित के प्रकांड पंडित शामिल थे, जिनकी योग्यता का डंका देश-विदेश में बजता था। चलिए जानते हैं कौन थे।

1. धन्वन्तरि :- नवरत्नों में इनका स्थान गिनाया गया है। इनके रचित नौ ग्रंथ पाये जाते हैं। वे सभी आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र से सम्बन्धित हैं। चिकित्सा में ये बड़े सिद्धहस्त थे। आज भी किसी वैद्य की प्रशंसा करनी हो तो उसकी 'धन्वन्तरि' से उपमा दी जाती है।

2. क्षपणक :- जैसा कि इनके नाम से प्रतीत होता है, ये बौद्ध संन्यासी थे। इससे एक बात यह भी सिद्ध होती है कि प्राचीन काल में मन्त्रित्व आजीविका का साधन नहीं था अपितु जनकल्याण की भावना से मन्त्रिपरिषद का गठन किया जाता था। यही कारण है कि संन्यासी भी मन्त्रिमण्डल के सदस्य होते थे। इन्होंने कुछ ग्रंथ लिखे जिनमें 'भिक्षाटन' और 'नानार्थकोश' ही उपलब्ध बताये जाते हैं।

3. अमरसिंह :- ये प्रकाण्ड विद्वान थे। बोध-गया के वर्तमान बुद्ध-मन्दिर से प्राप्य एक शिलालेख के आधार पर इनको उस मन्दिर का निर्माता कहा जाता है। उनके अनेक ग्रन्थों में एक मात्र 'अमरकोश' ग्रन्थ ऐसा है कि उसके आधार पर उनका यश अखण्ड है। संस्कृतज्ञों में एक उक्ति चरितार्थ है जिसका अर्थ है 'अष्टाध्यायी' पण्डितों की माता है और 'अमरकोश' पण्डितों का पिता। अर्थात् यदि कोई इन दोनों ग्रंथों को पढ़ ले तो वह महान् पण्डित बन जाता है।

4. शंकु :- इनका पूरा नाम 'शङ्कुक' है। इनका एक ही काव्य-ग्रन्थ 'भुवनाभ्युदयम्' बहुत प्रसिद्ध रहा है। किन्तु आज वह भी पुरातत्व का विषय बना हुआ है। इनको संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान् माना गया है।

5. वेतालभट्ट :- विक्रम और वेताल की कहानी जगतप्रसिद्ध है। 'वेताल पंचविंशति' के रचयिता यही थे, किन्तु कहीं भी इनका नाम देखने सुनने को अब नहीं मिलता। 'वेताल-पच्चीसी' से ही यह सिद्ध होता है कि सम्राट विक्रम के वर्चस्व से वेतालभट्ट कितने प्रभावित थे। यही इनकी एक मात्र रचना उपलब्ध है।

6. घटखर्पर :- जो संस्कृत जानते हैं वे समझ सकते हैं कि 'घटखर्पर' किसी व्यक्ति का नाम नहीं हो सकता। इनका भी वास्तविक नाम यह नहीं है। मान्यता है कि इनकी प्रतिज्ञा थी कि जो कवि अनुप्रास और यमक में इनको पराजित कर देगा उनके यहां वे फूटे घड़े से पानी भरेंगे। बस तब से ही इनका

नाम 'घटखर्पर' प्रसिद्ध हो गया और वास्तविक नाम लुप्त हो गया। इनकी रचना का नाम भी 'घटखर्पर काव्यम्' ही है। यमक और अनुप्रास का वह अनुपमेय ग्रन्थ है। इनका एक अन्य ग्रन्थ 'नीतिसार' के नाम से भी प्राप्त होता है।

7. **कालिदास :-** ऐसा माना जाता है कि कालिदास सम्राट विक्रमादित्य के प्राणप्रिय कवि थे। उन्होंने भी अपने ग्रन्थों में विक्रम के व्यक्तित्व का उज्जवल स्वरूप निरूपित किया है। कालिदास की कथा विचित्र है। कहा जाता है कि उनको देवी 'काली' की कृपा से विद्या प्राप्त हुई थी। इसीलिए इनका नाम 'कालिदास' पड़ गया। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से यह कालीदास होना चाहिए था किन्तु अपवाद रूप में कालिदास की प्रतिभा को देखकर इसमें उसी प्रकार परिवर्तन नहीं किया गया जिस प्रकार कि 'विश्वामित्र' को उसी रूप में रखा गया। जो हो, कालिदास की विद्वता और काव्य प्रतिभा के विषय में अब दो मत नहीं है। वे न केवल अपने समय के अप्रितम साहित्यकार थे अपितु आज तक भी कोई उन जैसा अप्रितम साहित्यकार उत्पन्न नहीं हुआ है। उनके चार काव्य और तीन नाटक प्रसिद्ध हैं।

8. **वराहमिहिर :-** भारतीय ज्योतिष-शास्त्र इनसे गौरवास्पद हो गया है। इन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। इनमें-'बृहज्जातक', सुर्यसिद्धांत, 'बृहस्पति संहिता', 'पंचसिद्धान्ती' मुख्य हैं। 'गणक तरंगिणी', 'लघु-जातक', 'समास संहिता', 'विवाह पटल', 'योग यात्रा', आदि-आदि का भी इनके नाम से उल्लेख पाया जाता है।

9. **वररुचि :-** कालिदास की भांति ही वररुचि भी अन्यतम काव्यकर्ताओं में गिने जाते हैं। 'सदुक्तिकर्णामृत', 'सुभाषितावलि' तथा 'शार्ङ्धर संहिता', इनकी रचनाओं में गिनी जाती हैं। इनके नाम पर मतभेद है। क्योंकि इस नाम के तीन व्यक्ति हुए हैं उनमें से- 1.पाणिनीय व्याकरण के वार्तिककार-वररुचि कात्यायन, 2. प्राकृत प्रकाश के प्रणेता-वररुचि, 3.सूक्ति ग्रन्थों में प्राप्त कवि-वररुचि।

■ ***पुरुषोत्तम नथरानी***

शिव-साधकों का कल्याणकारी मंत्र

'नमः शिवाय' यह शैव सम्प्रदाय का पवित्र-लोकप्रिय तथा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मन्त्र है। यह भगवान शिव को समर्पित है। इसे पंचाक्षर मन्त्र कहा जाता है। इसमें यदि ॐ को जोड़ दिया जाए तो यह षड़ाक्षर मन्त्र कहलाता है। शिव की अत्यधिक मनमोहक स्तुति है जिसमें भक्त अपने आराध्य की बड़ी श्रद्धा से स्तुति करता है। समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए शिव पंचाक्षर मन्त्र का जाप किया जाता है। भगवान शिव के गुणों का आराध्य द्वारा स्तवन किया जाता है। अल्प अक्षरों वाला यह मन्त्र मोक्ष और ज्ञान का प्रदाता है और सिद्धि का दाता है।

भगवान शिव संसार के उत्पादक, पालक और संहारक हैं। भक्त के हृदय में स्थित शिव सभी के लिए कल्याणकारी है। शिवोपासक को अपने उपास्य देव के समान ही मत्सरयुक्त नहीं होना चाहिए। सीमित संपत्ति और अल्प परिग्रह से भी यदि शिव की उपासना की जाए तो भी भोले भंडारी प्रसन्न हो जाते हैं।

'महादेव महादेव महादेवेति यो वदेत्।
एकेन मुक्ति माप्नोति द्वाभ्यां शंभू ऋणी भवेत्।।

शिव पंचाक्षर स्तोत्र, शिवमानसपूजा, शिवाष्टक, द्वादश ज्योतिर्लिंग स्तोत्र आदि भी ऐसे स्तोत्र हैं, जिनका भक्तिपूर्वक पाठ करने से मानव जीवन का अत्यधिक कल्याण होता है। कलियुग में तो शिवाराधना सर्वोपरि फल प्रदाता है। 'नमः शिवाय' तथा 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्र का जाप तो व्यक्ति कभी भी, कहीं भी उठते-बैठते कर सकता है। शिव का सगुण स्वरूप मनोहर है, मोहक है तथा अद्भुत है।

शिव के प्रमुख कार्य हैं सर्वप्रथम सृष्टि का निर्माण, फिर उसका पालन करना और फिर उसका संहार करना। समय-समय पर वे उसमें परिवर्तन भी करते हैं और भक्तों को मोक्ष भी प्रदान करते हैं। शिव साधना में यदि कोई सर्वाधिक प्रभावशाली मन्त्र है तो वह है शिव पंचाक्षर मन्त्र। इस मन्त्र की शक्ति कल्याणकारी है तथा अनादिकाल से यह प्रभावी मन्त्र अपने साधकों को ध्यानावस्थित अवस्था में लाकर

आत्मशुद्धि तथा शरीर शुद्धि में सहायक है।

शिव तथा शिवा की सम्मिलित शक्ति से ही कल्याणकारी उर्जा का जन्म होता है। आत्मबल का संचार होता है। भक्त की विसंगतियों का नाश होकर मन की शुद्धि होती है। यह पंचाक्षरी मन्त्र भक्त में सन्निहित पाँच तत्त्वों को जाग्रत करने वाला मन्त्र है। इसके पठन-पाठन से साधक को इच्छित फल की प्राप्ति होती है। उसकी मनोकामनाएँ पूर्ण होती है। इसमें 'ॐ' को समाहित कर देने पर यह षड़ाक्षर मन्त्र द्विगुणित फल को प्रदान करता है। यदि रुद्राक्ष की माला से इस मन्त्र का जाप किया जाए तो आशुतोष भगवान शिव समस्त सिद्धियों को प्रदान करते हैं। षड़ाक्षर मन्त्र सभी अशुभ बातों का हरण करता है। अपने सामर्थ्य के अनुसार भक्त को इसका पाठ करना चाहिए। इसके नियमित पठन से गोदान, तीर्थाटन, गया श्राद्ध आदि पुण्य कार्यों का फल प्राप्त होता है। यही सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाला मन्त्र है। कहा जाता है कि ब्रह्माजी ने भी दीर्घ अवधि तक इस पंचाक्षर मन्त्र का जप कर भगवान शिव को प्रसन्न किया था। देवाधिदेव महादेव महान् हैं। हम उनके गुणों के विस्तार को शब्दों में वर्णित नहीं कर सकते हैं। आचार्य पुष्पदन्त ने भी शिवमहिम्न स्तोत्र में लिखा है-

'असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे,
सुरतरवर शाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानां ईश पारं न याति।।

भगवान शिव ने एक गृहस्थ का जीवन भी जीया है तो संन्यासी का जीवन भी उनकी विशेषता रहा है। शिवजी का जीव भक्तों के लिए प्रेरणास्रोत रहा है। वर्तमान समय बड़ा ही विकट है। अनुशासनहीनता, अराजकता, अनैतिकता आदि सर्वत्र व्याप्त है। मानव जीवन में पाशविक प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं। मानवता कराह रही है। मानव जीवन में गुणों का पतन जीवन के हर क्षेत्र में दृष्टिगोचर हो रहा है। आशुतोष शिव ही मानवता की रक्षा का भार ग्रहण कर सकते हैं। समुद्र मंथन के समय भी उन्होंने चौदह रत्नों में निकलने वाले विष का पान कर सभी की रक्षा की और उन्हें नीलकंठ की संज्ञा प्राप्त हुई। यह इस बात का द्योतक है कि कठिन परिस्थिति में भी हमें धैर्य धारण करना चाहिए। सच्चा शिव भक्ति विपरीत स्वभाव वालों से भी मित्रवत् व्यवहार करता है। विषैले सर्प को वे गले लगाते हैं तो भूत पिशाच अर्द्धनग्न अवस्था में विक्षिप्त के समान शिवजी की वर यात्रा में अपनी सहभागिता निभाते हैं। इसीलिए शिवजी को सभी देवतागण सम्माननीय मानते हैं।

शिव परिवार भी सनातन धर्म को निभाने वाला समन्वयवादी रहा है। शिवजी के तीन नेत्र हैं। वे तीसरे नेत्र का उपयोग विरले ही करते हैं। उनका वाहन वृषभ है तो माता पार्वती सिंह पर विराजमान हैं। इनके एक पुत्र गणेशजी मूषक पर सवार हैं तो दूसरे पुत्र कार्तिकेय का वाहन मयूर है। पिताश्री शिवजी के गले के हार सर्प हैं जो कि विपरीत स्वभावधारी हैं, जन्म से एक-दूसरे के विरोधी हैं। इतनी विषमता होने पर भी सम्पूर्ण परिवार साथ-साथ जीवन व्यतीत करता है। शिवजी अपने शरीर पर भस्म लगाकर और जटाजूट धारण कर सादगीपूर्ण जीवन यापन करते हैं। वर्तमान समय में परिवार भौतिकवाद की ओर बढ़ रहे हैं, ऐसे समय शिव परिवार हमारे लिए एक आशावादी दृष्टिकोण का परिचायक है। शिव के सन्निकट रहने के लिए हमें सर्वदा 'नमः शिवाय' तथा 'ॐ नमः शिवाय' का जप करना चाहिए, जिससे हमें आत्मिक शान्ति का अनुभव होता रहे और हम सुखद जीवन का आनन्द प्राप्त कर सकें-

महादेव महादेव महादेवेति वादिनम्।
वत्सं गौरिव गौरीशो धावन्तमनुधावति।।

■

डॉ. शारदा मेहता
सीनि. एमआईजी-103, व्यास नगर,
ऋषिनगर विस्तार, उज्जैन (म.प्र.) 456 010
mail : drnarendrakmehta@gmail.com
फोन- 0734-2510708, मो. 9406660280

प्रतिस्वर

वैचारिकी के जनवरी-फरवरी अंक में आपके संपादकीय कौशल से प्रभावित हुआ। वैचारिकी की सामग्री पठनीय ही नहीं, संग्रहणीय भी है। इस अंक में डॉ. आनन्द शर्मा, डॉ. अर्चना द्विवेदी, डॉ. अलकनन्दा शर्मा और डॉ. विष्णुचन्द्र पाठक के आलेखों ने विशेष प्रभाव छोड़ा, अन्य सामग्री भी सराहनीय है। पत्रिका का स्तर उच्च कोटि का है, इसे और ऊंचाइयां देंगे। ऐसे कामना है।

–डॉ. मदन सैनी
कालूवास, वार्ड-38, श्रीडूंगरगढ़
बीकानेर (राज.) 331803
मो. 7597055150

वैचारिकी का नवम्बर-दिसंबर 2020 अंक पीडीएफ से भेजने के लिए धन्यवाद। कोरोना काल में भी पत्रिका की निरतंरता बनाए रखने के लिए वैचारिकी प्रबंधन और इससे जुड़ी टीम बधाई की हकदार है। शोधपरक आलेखों की यह पत्रिका कोलकाता से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं में अपनी एक विशिष्ट पहचान रखती है। पीडीएफ रूप में पत्रिका पढ़ना और वह भी मोबाइल पर कितना श्रमसाध्य और कठिन है इसे पढ़ने वाला ही जानता है। सारी दुश्वारियों के बावजूद हर आलेख आद्योपांत पढ़ा।

इस अंक में प्रकाशित सभी शोधपरक आलेख कुछ न कुछ नयी जानकारी देने वाले पठनीय, रोचक, और अच्छे लगे। भाषा के रूप में अंग्रेजी से कोई वैरभाव नहीं, लेकिन अच्छा होता यदि अंग्रेजी आलेख का भी हिन्दी अनुवाद दिया जाता। मुद्रित रूप में इस पत्रिका के आगामी अंक की प्रतीक्षा रहेगी। शुभकामनाएं।

– जितेंद्र धीर
क्यू 283, मुदियाली रोड
गार्डेनरीच रोड, कोलकाता-700024

वैचारिकी जुलाई-अक्टूबर 2020 अंक प्राप्त हुआ। सभी आलेख तो पढ़ नहीं पाई हूं कारण सभी लेख स्तरीय गहन अध्ययन चिंतन मनन का परिपाक उन्हें पचाने में भी समय लगता है। इसी अंक में पाठकों की प्रतिक्रियाओं में मेरे लेख विज्ञान जगत की महिलाएं पर भी तीन प्रतिक्रियायें पढ़ीं अच्छा लगा। मेरे पास लगभग आठ पाठकों ने फोन पर मुझे इस लेख के लिए बधाई दी और चार पत्र जिनमें एक पत्र जादवपुर के

चैतन्यदास तरफदारजी का है बहुत सुन्दर पत्र है। उल्लेख इसलिए कि बहुत दूर-दूर वैचारिकी जाती है। मुझे प्रसन्नता है। हमारी भारतीय संस्कृति परम्पराओं के लिए सार्थक अभिमान रखती अपने देश के लिए काम करती महिलाओं के कार्य को सामान्य से सामान्य को जानकारी करा देने के उद्देश्य से मैं सेवानिवृत्ति के उपरान्त काम कर रही हूं कितने दिन कर पाउंगी प्रभु राम ही जाने।

–डॉ. विद्या केशव चिटको
8 यमाई, अक्षर सोसाइटी,
समर्थ नगर, नासिक-422005

'वैचारिकी' जुलाई से अक्टूबर 2020 का संयुक्तांक भाग 36 प्राप्त हुआ साधुवाद। विगत वर्षों में उक्त पत्रिका असमय व कभी अप्राप्य ही रही। इस वर्ष 'कोरोना' की दुर्भाग्यपूर्व अवधि में इसे प्रकाशित कर डॉ. मूंधड़ाजी पाठकों पर आपने उपकार किया है। मैं गत 28 वर्षों से सेवानिवृत्त प्रधानाध्यापक मा.वि. राजस्थान से सेवा निवृत्त हूं। पत्रिका यदा-कदा मिलने पर भी जो भी अंक मिल जाता है संग्रहणीय सामग्री का अध्ययन कर कृतार्थ हो जाता हूं। अभी 86 वर्ष की आयु में जितना भी पढ़ पाता हूं बड़ा संतोष मिलता है। श्रद्धेय मूंधड़ा साहब ने अपने सम्पादकीय में पत्रिका की सामग्री के बारे में सामान्य परिचय देकर पाठकों को अध्यानार्थ प्रोत्साहित किया है।

– काशीलाल शर्मा
सी-35, आर. के. कॉलोनी,
भीलवाड़ा (राज.) 311001
मो. 9413768154

कोरोना महामारी के इस विकट और संकट के काल में भी आपने वैचारिकी पत्रिका का प्रकाशन कार्य जारी रखा इसके लिए आपको साधुवाद। पूर्व की भांति इस पत्रिका का संयुक्तांक भी मार्के का बन पड़ा है। सभी सुधी रचनाकारों ने अपनी रचनाधार्मिता का निर्वहन करते हुए पत्रिका को गरिमामय बनाया है। आज की इस मशीनी युग में मनुष्य अपने कामों से व्यस्त है उसकी इस व्यस्तता को मानसिक ज्ञान और सुकुन पहुंचाने के लिए अच्छा साहित्य ही संजीवनी बूटी का कार्य करता है। मनुष्य को वही आनंद और सुकून पहुंचाने में आपकी पत्रिका सराहनीय कार्य कर रही है। इस पत्रिका में समाहित सभी रचनाएं पत्रिका को उच्च शिखर पर पहुंचाती है। खासकर कश्मीर की उत्पति का आख्यान (अग्निशेखर), प्रभाकर माचवे का वैविध्यपूर्ण रचना संसार (डॉ. कृष्णा शर्मा), संस्कृति के सच्चे रखवाले (राकेश भारतीय), हस्तलिखित साहित्यिक पत्रों को महत्व (डॉ. अमर सिंह वधान), एवं केदारनाथ सिंह की कविताओं में नारी संवेदना (डॉ. नीतू कुमारी) ज्ञानवर्द्धक और शिक्षाप्रद हैं और आपने नई पीढ़ी के लेखकों को भी जोड़कर उन्हें भी प्रोत्साहित किया है। संपादकीय लेख बेजोड़ है। मैं सभी साहित्यकारों को ढेर सारी बधाई और शुभकामनाएं देता हूं। आशा है कि आने वाले पलों में पत्रिका साहित्य की सेवा में सदैव अग्रसर रहेगी।

– डॉ. वासुदेवन शेष
अक्षय फ्लैट्स
53, इरुसप्पा स्ट्रीट, चेन्नई-600005
मो. 9444170451

बहुत लम्बी प्रतीक्षा के पश्चात वैचारिकी का जुलाई से अक्टूबर 2020 का संयुक्ति अंक प्राप्त करके अत्यंत हर्ष का अनुभव हुआ। कवि कहते हैं-

खुशी क्या शय है जाकर पूछ लो
उस शख्श के दिल से।
तमन्ना जिसकी निकली हो मगर
निकली हो मुश्किल से।।

मन प्रभुल्लित हो गया। सदैव की भांति रचनाएं तो आप बहुत उत्कृष्ठ लाए हो। सम्पादकीय बहुत प्रेरणाप्रद है जिसमें आपने दो बातें बड़ी महत्वपूर्ण कही हैं। एक तो यह कि भाषा जब तक

जीविकोपार्जन की भाषा न बन जाए तब तक इसका पुष्पित और पल्लवित होना संदिग्ध ही है और दूसरी यह कि भाषा को अधिक समृद्ध बनाने के लिए तकनीकी शब्दावली को ज्यों का त्यों उसी रूप में ग्रहण कर लेना चाहिए जिस रूप में वह लोक प्रचलित हो गयी है। भाषा का संकुचन इस को विश्व पटल पर लाने में बाधक सिद्ध होगा। हमने हिन्दी को विश्व की भाषा बनाना है तो अन्य विदेशज शब्दों को आत्मसात करने से यह सबको स्वीकार होगी। आपके दोनों सुझाव प्रशंसनीय हैं।

गुजराती कृति गिरधर रामायण पर डॉ. किशोर काबरा का लेख बहुत ज्ञानवर्धक है। उन्होंने इस ग्रंथ का अवलोकन नहीं गहन अनुशीलन किया है जिसमें बहुत सी नई जानकारियां दी हुई हैं। विश्वामित्र रामलक्ष्मण को यज्ञ रक्षा के लिए मांग कर ले गये। इससे पूर्व राम को सम्पूर्ण भारत की यात्रा कराके जनता के संकटों तथा पीड़ाओं तथा सर्वव्यापक संस्कृत से परिचित कराया जिसमें सारे भारत का भूगोल आ गया। लोक कल्याण तथा लोक रंजन के लिए राजा को प्रजा को परिस्थिति का ज्ञान होना चाहिए। यह प्रसंग बहुत महत्वपूर्ण उद्धृत किया है। यह जानकारी तो बिल्कुल नई है कि शूर्पनखा कामासक्त होकर नहीं अपितु अपने पुत्र शंबर के वध का लक्ष्मण से बदला लेने गयी थी। लेख बहुत श्रेष्ठ है, सराहनीय है। राजगोपाल सिंह वर्मा ने शुक्रताल तीर्थ का बड़ा श्रद्धायुक्त वर्णन किया है। इसी तीर्थ के बिल्कुल निकट एक महान संत पद्मश्री स्वामी कल्याण देव का आश्रम है जो 120 वर्ष से अधिक की आयु में ब्रह्मलीन हुए हैं। इन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की प्रेरणा से सन्यास ग्रहण किया और दलित (उस समय हरिजन) बस्तियों में जाकर उनके लिए पवित्र जलाशय तथा नलके लगवाते थे और उनको धर्म परिवर्तन से बचाते थे यह राजाओं जैसी आकर्षक वेशभूषा, कीमती आभूषण पहनकर 'वेश प्रताप पूजिए तेहीं' जो गुण हीन है परन्तु वेश के प्रताप से पूजे जाते हैं ऐसा सामन्तवादी जीवन परित्याग कर गांव-गांव में सरकार से कोई अनुदान या सहायता लिए बिना ग्रामीण जनता के दान से ही 65 पोलिटैकनिक तथा ई.टी.आई. मुजफ्फर नगर के निकटवर्ती क्षेत्र में खोल दिए। जब इंदिरा गांधी ने पद्मश्री आदि से अलंकृत करने वाले राष्ट्रपति भवन के समारोह में देखा कि एक साधु फटी हुई पगड़ी से अपना मुंह पोंछ रहा है तो कार्यक्रम रुकवा दिया और स्वामीजी के पास मंच पर जाकर तीन मिनट उनसे बात करके उनके चरणों में झुक गयी। निर्धन, झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाली जनता के लिए इतना उत्कर्ष कार्य करने वाले ही सच्चे संत होते हैं। लेखक महोदय या अन्य पाठक जब शुक्रताल जाएं तो इस आश्रम के दर्शन अवश्य करके माथा टेकें। आत्मा को बहुत शांति मिलेगी। अन्य रचनाएं विशेषकर डॉ. तिवारी की अजीमुल्ला खां को श्रद्धांजलि, डॉ.एस. प्रीति द्वारा पुनर्नवा का विश्लेषण, डॉ. कृष्ण शर्मा का प्रभाकर माचवे की रचनाओं का विशद विवेचन चित्तकोबरा में नारी अस्मिता आदि बहुत श्रेष्ठ लगे। आशा है ऐसी श्रेष्ठ रचनाएं देकर आप बौद्धिक संतुष्टि प्रदान करते रहेंगे।

- डॉ. हिम्मत सिंह सिन्हा
अमोलक राम कॉलोनी, गली-2,
कृष्णा नगर गामड़ी रोड, कुरुक्षेत्र-136118
फोन-01744-291903

अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका **'वैचारिकी'** का जुलाई-अक्टूबर 2020 के संयुक्तांक को मनोयोग से पढ़ा। प्रकाशित समस्त लेखकों के विचार उत्तमोत्तम एवं अत्युपयोगी हैं। संसार के प्राचीनतम ग्रंथ वेद हैं, वहां हम अपने को पृथ्वी पुत्र कहते हैं– 'माताभूमिः पुत्रोऽहम पृथिव्या'। सभ्यता और संस्कृति पर विचार करते समय इस पृथ्वी की सुरक्षा के लिए और अपने जीवन को सुचारु चलाने के लिए पर्यावरण सुधार पर अधिकाधिक विचार करना होगा।

उक्त अंक में श्री राकेश भारतीय का 'संस्कृति के सच्चे रखवाले' नामक सर्वोत्तम लेख पढ़ने को मिला। इसमें आपने संस्कृति के सच्चे इन रखवालों

में बी. हरीश, लल्लू वाजपेयी, सिद्धैया नायडू, ईसाई येसुदास, राम आल्टर और जुबेदुर्रह मान जैसे महाशयों का उत्तभरीत्या वर्णन किया है। यहां आपने ज्ञात कराया कि 'केरल के थ्रिस्सूर जिले के पंजल गांव में नम्बूदरी ब्राह्मणों के परिवारों की पहल से बनाये गये ट्रस्ट द्वारा वेदों द्वारा अनुशंसित सोमयज्ञ का आयोजन विश्वशांति और पर्यावरण की सुरक्षा के लिए किया जाता है।' मेरा निवेदन है कि पर्यावरण हितैषियों में अद्योलिखित नाम और जोड़ लें, ये भी संस्कृति के सच्चे रखवाले सिद्ध होते हैं–

1. सुन्दरलाल बहुगुणा– सिर कटा कर पेड़ बनाने का अनुपम एवं अद्‌भुत उदाहरण राजस्थान के जोधपुर जिले के खेजड़ली गांव में संवत् 1787 में हुई घटना का मिला। यहां विश्नोई समाज के 363 स्त्री-पुरुष खेजड़ी (शमीवृक्ष) के पेड़ों को बचाने के लिए शहीद हो गये। वे पेड़ों से चिपकते रहे और कटते रहे। सबसे पहले अमृता देवी ने खेजड़ी से चिपक कर अपना बलिदान दिया। इन पर्यावरण हितैषियों की स्मृति में आज भी भाद्रपद शुक्ला दशमी को उस गांव में मेला लगता है। इसी चिपको आन्दोलन को पुनः प्रारम्भ करने वाले हैं– सुन्दर लाल बहुगुणा। इन्होंने उत्तरांचल के अलकनन्दा घाटी के चमोली के मण्डल गांव में ग्रामीणों की मदद से चिपको का प्रयोग कर पेड़ों को कटने से बचाया। यह चिपको आन्दोलन 1973 में प्रारम्भ हुआ, जो विश्वभर में मशहूर हुआ। कर्नाटक में यही आन्दोलन अप्पिको नाम से चला। श्री बहुगुणा ने टिहरी बांध बनने के खिलाफ कई बार अनशन भी किया। बांध तो बन गया, किन्तु पेड़ों की कटाई अवश्य रुक गयी।

2. चण्डीप्रसाद भट्ट- सुन्दरलाल बहुगुणा के साथ ये भी चिपको आंदोलन के सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे। ये ग्लेशियरों के पिघलने और हिमालयी नदियों पर संकट को लेकर भी निरन्तर सक्रिय रहे।

3. वन्दना शिवा - पर्यावरण के लिए किसी भी मंच पर लड़ाई लड़ने में सबसे आगे रहने वाली महिला रही। इन्होंने 1982 में रिसर्च फाउण्डेशन फॉर साइंस टेक्नॉलाजी एण्ड इकोलाजी की स्थापना की। इन्होंने चिपको आन्दोलन में भी भाग लिया। पर्यावरण पर आपकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

4. डॉ. गुरुदास अग्रवाल– गुरुजी के नाम से प्रसिद्ध डॉ. अग्रवाल हाथ से कती खादी के वस्त्र पहनते रहे तथा साइकिल से गांव-गांव जाकर प्रकृति-सुरक्षा की अलख जगाते रहे। आपने गंगा नदी की सेवा में भी जीवन को समर्पित किया।

5. बलवीरसिंह सीचेवाल–वृक्षारोपण, भूमिगत सीवरेज प्रणाली की स्थापना और जल संरक्षण के लिए सतत प्रयासरत रहने वाले सीचेवाल ने सतलज की सहायक नदी काली बोई को छह साल के अथक परिश्रम के बाद शुद्ध सदा-नीरा बना दिया।

6. सुनीता नारायण– अपनी 21 वर्ष की अवस्था से ही पर्यावरण से जुड़ने वाली सुनीता नारायण के प्रयासों से पर्यावरण सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए।

7. डॉ. रवि चोपड़ा– इनका मिशन रहा गरीबों को शक्ति सम्पन्न बनाकर प्राकृतिक संसाधनों को बढ़ावा देना। आप पर्यावरण व तकनीक के सहसंयोजन के हिमायती रहे।

8. राजेंद्र कुमार पचौरी– आपने पर्यावरण संबंधी कार्यक्रमों में पूर्ण मनोयोग से भाग लेकर तथा कई पुस्तकें लिखकर इसकी महत्ता प्रदर्शित की।

9. धिम्माक्का– कर्नाटक की वृद्ध महिला ने अपने पति के सहयोग से अपने गांव कुडुर डुलिकल की चार किलोमीटर लम्बी सड़क के दोनों ओर लगभग 300 बरगद के वृक्ष लगा दिये और उनकी अपने बच्चों की तरह परवरिश करती रही।

इसी प्रकार अन्य भी कई ज्ञाताज्ञात मानव महिषी हैं जो पर्यावरण को सुधारने में संलग्न रहे, ये भी संस्कृति के सच्चे रखवाले कहलाने के अधिकारी हैं। इन सभी को सादर शत-शत नमन।

-गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'

21, रामेश्वरधाम, मुरलीपुरा, जयपुर (राज.)

मो. 9214881375

भारतीय विद्या मंदिर के प्रकाशन

हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका
कृष्णबिहारी मिश्र
मूल्य 750/- पृ.सं. 551
ISBN : 978-81-89302-48-1

श्रीरामकथा की कथा (प्रथम खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 379
ISBN : 978-81-89302-46-7

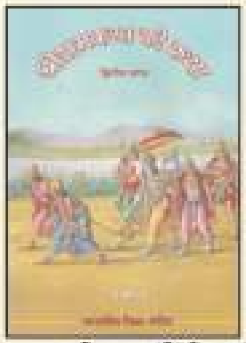

श्रीरामकथा की कथा (द्वितीय खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 381
ISBN : 978-81-89302-50-4

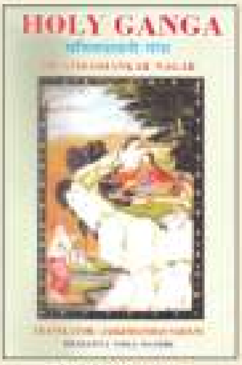

Holy Ganga
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 750/- Pages : 331
ISBN : 978-81-89302-62-7

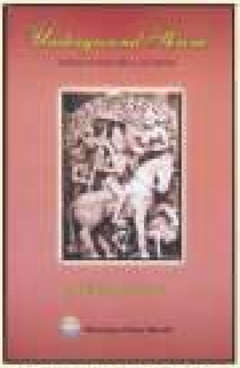

Underground Shrine
Jaikishandas Sadani
Rs. 200/- Pgs. 112
ISBN : 978-81-89302-39-9

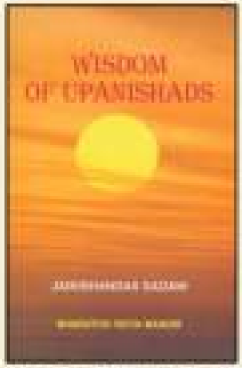

Wisdom of Upanishads
Tr. Jaikishandas Sadani
Rs. 130/- Pgs. 124
ISBN : 81-89302-04-3

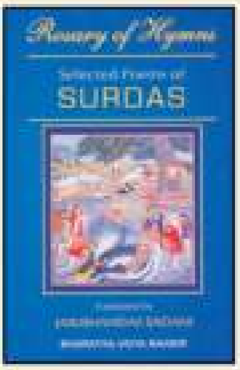

Rosary of Hymns
Tr. Jaikishandas Sadani
Rs. 150/- Pgs. 154
ISBN : 81-89302-01-9

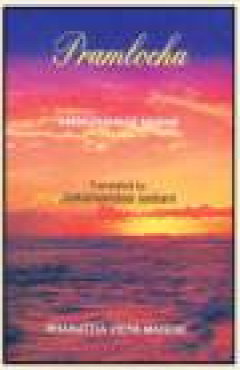

Pramlocha
Tr. Jaikishandas Sadani
Rs. 130/- Pgs. 128
ISBN : 978-81-89302-02-7

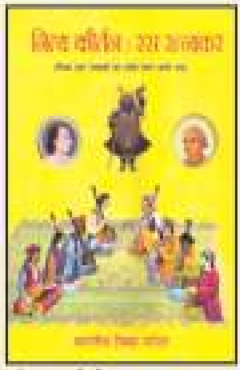

नित्य कीर्तन : रस रत्नाकर
मूल्य 900/-
ISBN : 978-81-89302-35-1

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें
शंकरलाल सोमानी, सिम्पलेक्स हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल : 09830559364 ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

From	TO
BHARATIYA VIDYA MANDIR 12/1, Nellie Sengupta Sarani Kolkata - 700087 *(W.B.)*	

↑ भारतीय विद्या मंदिर द्वारा वर्कर्स ट्रेनिंग एण्ड डेवलपमेंट प्रोग्राम का निरीक्षण करते हुए डॉ. बी. डी. मूंधड़ा

साइट पर प्रशिक्षकों द्वारा व्यावहारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था ↑

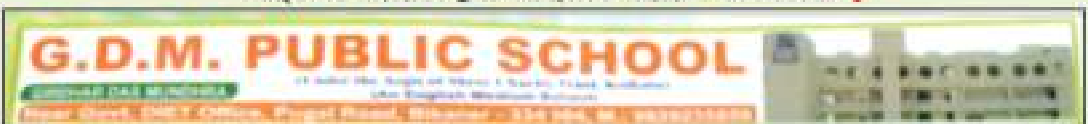

↑ जी. डी. एम. पब्लिक स्कूल, बीकानेर में बच्चों के साथ विचार-विमर्श करते हुए डॉ. बी.डी. मूंधड़ा